कबीर साहित्य की आलोचना

(Criticism of Kabir Literature)

प्रेम सागर भाटी

कबीर साहित्य की आलोचना

कबीर साहित्य की आलोचना
(Criticism of Kabir Literature)

प्रेम सागर भाटी

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5468-0

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढ़ता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ़प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध- अवरोध तथा समग्र द्वैत- अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू- मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनस्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और आध्यात्म के एक महान नेता के समान प्रयत्नशील हैं। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनस्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता

अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से उन्होंने हिंदू- मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद- भाव, ऊँच- नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों में आग लगी, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**कबीर साहित्य**	**1**
	कबीर का प्रेम	15
2.	**कबीर जीवन परिचय**	**19**
	महात्मा कबीर का जन्म-काल	19
	जन्म	20
	जन्म स्थान	20
	स्त्री और संतान	22
	लहरतरब प्रगट्या स्थल	22
	भाषा	23
	कृतियाँ	23
	धर्म के प्रति	24
	कबीर के राम	25
	बालक का नामकरण करने ब्राह्मण का आना	28
	कबीर की बाल-लीला	31
	कबीर साहब की सुन्नत	32
	कुर्बानी	33
	कबीर साहब को नीरू के घर से भगाने का प्रयत्न	33

कबीर वचन 39
रामानंद वचन 39
बादशाह का कबीर साहब पर विश्वास 42
3. कबीर कालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ 46
4. कबीर का साहित्यिक परिचय 51
काव्य रूप एवं संक्षिप्त परिचय 52
व्यवहार प्रधान साखियाँ 55
रमैनी 57
चौंतीसा 57
बावनी 58
विप्रमतीसी 58
वार 58
थिंती 58
चाँचर 58
बसंत 59
हिंडोला 59
बेलि 60
कहरा 60
बिरहुली 61
उलटवाँसी 61
5. कबीर की साखी 63
कबीर की साखी 66
6. कबीर के दोहे 106
7. कबीर की रचनाएँ 116
बीजक 117
कबीर रचनावली 117
अवधू और अवधूत 118
कबीर के दोहे 120
8. कबीर का समकालीन समाज 121
समकालीन भारतीय संस्कृति 122
कबीरदास 122

कबीर की मजार, मगहर 124
धार्मिक आन्दोलन 125
हजारी प्रसाद द्विवेदी 126
9. बीजक **128**
मौखिक उपदेश 128
बीजक मूल ग्रंथ 129
बीजक का मुद्रण 130
बीजक कबीर का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ 132
बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व 132
बीजक की अनेक टीकाएँ 133
10. कबीर की आलोचना **134**
11. कबीर साहित्य आलोचना **141**

1

कबीर साहित्य

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढ़ता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ़ ., प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमोला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत् के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के आस-पास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ़ के पास मानता है।

कबीर जब हुए देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व

कायम करना ही नहीं बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था–कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में भक्ति साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुड़ी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्त्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्म–चिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्त्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जड़कारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को भुला दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीर ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं–भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की।

क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलतः मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट -घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड़ क्यो जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई। । " इसी चिंतन में कबीर कहते हैं–"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है–बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी। । " तथा–"पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई। ।"

प्रेम साध्य भी है–साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुतः आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया–"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि।" कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्तःकरण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बाँधी रे। । " कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये कूँ सोभा नहीं–देख्या ही परमान। । " वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार। । " और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ। ।"

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवन दर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्त्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार

का झगड़ा छूटै नाहिं। ।" कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खड़े-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।" सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई। । " इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत। । " आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूडे धार में–चढ़ पाथर की नाव।"

जैसे ही सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर ने इस तरह 'अंग' के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ़ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू- मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढ़ग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय। । " इतना ही नहीं इससे भी बढ़कर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय। । " ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। "पाहन पूजे हरि मिले–तो मैं पूजूं पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार। । " कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था उन्होंने बताया "मुंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए। बार-बार के मुंड ते भेड न बैकुंठ जाए। । " कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत, भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा-"क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लगि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान। । " मरणोपरांत गंगा में अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा–"जारि वारि

कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा। । " समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं–यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। "हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ। ।"

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया, और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे। उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, "काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान। । " राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल। ।" कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, "ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो।" कबीर में अतिवाद कहीं भी नहीं। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा–"ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना काबे कैलास में। मौको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में। ।"

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुतः उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने परमात्म रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। "कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम। ।"

पंद्रहवीं शताब्दी में संतकाल के प्रारंभ में सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस क्षोभ का कारण खोजों में व्यस्त थे और अपने- अपने ढ़ंग पर समाज और धर्म को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे। इस अराजकता का कारण इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इसके बाद देश के

उथल- पुथल वातावरण में महात्मा कबीर ने काफी संघर्ष किया और अपने कड़े विरोधों तथा उपदेशों से समाज को बदलने का पूरा प्रयास किया। सांप्रदयिक भेद- भाव को समाप्त करने और जनता के बीच खुशहाली लाने के लिए निमित्त संत- कबीर अपने समय के एक मजबूत स्तंभ साबित हुए। वे मूलत: आध्यात्मिक थे। इस कारण संसार और सांसारिकता के संबंध में उन्होंने अपने काल में जो कुछ कहा, उसमें भी आध्यात्मिक स्वर विशेष रूप से मुखर है।

इनके काजी मुल्ला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाज।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा ग्यारिसि गंगदिवाजा।
कहे कबीर दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरुक का करता एकै ता गति लखी न जाई।

कबीर- व्यवहार में भेद- भाव और भिन्नता रहने के कारण सांप्रदायिक कटुता बराबर बनी रही। कबीर दास इसी कटुता को मिटाकर, भाई चारे की भावना का प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि राम और रहीम में जरा भी अंतर नहीं है –

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध- अवरोध तथा समग्र द्वैत- अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू- मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनस्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और आध्यात्म के एक महान नेता के समान प्रयत्नशील हैं। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनस्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से उन्होंने हिंदू- मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

ना जाने तेरा साहब कैसा है,
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है,
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।

हिंदू- मुसलमान दोनों का विश्वास भगवान में है। कबीर ने इसी विश्वास के बल पर दोनों जातियों को एक करने का प्रयत्न किया। भाईचारे की भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सबद सरुपी जिव- पिव बुझों,
छोड़ो भय की ढेक।
कहे कबीर और नहिं दूज।
जुग- जुग हम तुम एक।

कबीर शब्द- साधना पर जोर दे रहे हैं। इनका कथन है, तुम श्रम तज कर शब्द साधना करो और अमृत रस का पान करो, हम तुम कोई भेद नहीं हैं, हम दोनों इसी एक पिता की संतान हैं। इसी अर्थ में कबीर दास हिंदू और मुसलमान के स्वयं विधायक हैं।

बड़े कठोर तप, त्याग, बलिदान और संकल्प शक्ति को अपना कवच बनाकर भारत की जनता ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली, लेकिन इसके साथ ही सांप्रदायिकता की लहर ने इस आनंद बेला में विष घोल दिया। भारत का विभाजन हुआ। इस विभाजन के बाद असंख्य जानें गई, लाखों घर तबाह हुए और बूढ़े, बच्चे, जवान, हिंदू, मुस्लिम सब समाज विरोधी तत्त्वों के शिकार हुए। इन तमाम स्थितियों से निबटने के लिए मानवतावादी सुधार की आवश्यकता थी, यह काम अध्यात्म से ही संभव था। कबीर ने अपने समय और अब हमलोग भी एक दिन चले जाएँगे। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अल्प है। इस अवधि का सदुपयोग इस स्मरण में करना चाहिए। सांसारिक हर्ष- विषाद को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहिए।

पंडितों का ढोंगपूर्ण रवैया देखकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं –

पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है,
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो सो भी साहब लगता है,
ऊँचा निचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है,
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।

कबीर शोषणकर्ता को रोषपूर्ण आगाह करते है कि भगवान के दरबार में न्याय होने पर उन्हें अपने किए का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दूसरी ओर निरीह जनता को वे समझाते हुए कहते हैं –

कबीर नौवति आपणी, दिन दस लेहु बजाई,
ऐ पुर पारन, एक गली, बहुरि न देखें आई।

महात्मा कबीर कहते हैं कि यह जीवन कुछ ही दिनों के लिए मिला है, अतः इसका उपयोग सार्थक ढंग से खूब आनंदपूर्वक करना चाहिए।

जो करेंगे सो भरेंगे, तू क्यों भयो उदास,
कछु लेना न देना, मगन रहना,
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु चरण में लपटे रहना।

"महात्मा कबीर साहब संतप्त जनता को समझाते हुए कहते हैं कि कर्त्तव्य निर्विकार रूप से करो, व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ों, सर्वदा अपने मन को गुरु में लगाए रहो। "

जीवित ही कछु कीजै,
हरि राम रसाइन पीजै।

महात्मा कबीर दास ने पीड़ित जनता के दुख-दर्द को दूर करने के लिए "राम रसायन" का आविष्कार किया। कबीर साहब ने पहली बार जनता को उसकी विपलता में ही खुश रहने का संदेश दिया।

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे। उन्होंने देश के अंदर और बाहर की परिस्थितियों पर एक ही साथ धावा बोलकर, समाज और भावलोक को जो प्रेरणा दी, उसे न तो इतिहास भुला सकता है और न ही साहित्य इतनी बलिष्ठ रूढ़ियों पर जिस साहस और शक्ति से प्रहार किया, यह देखते ही बनता है।

संतों पांडे निपुण कसाई,
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई,
आतमराम पलक में दिन से, रुधिर की नदी बहाई।

कबीर ने समाज की दुर्बलता और अद्योगति को बड़ी करुणा से देखकर, उसे ऊपर उठाने के मौलिक प्रयत्न किया। उन्होंने भय, भर्त्सना और भक्ति जैसे अस्त्रों का उपयोग राजनैतिक विभीषिकाओं और सामाजिक विषमताओं जैसे शत्रु को परास्त करने के लिए किया। कबीर साहब यह बात समझ चुके थे कि इन शत्रुओं के विनाश होने पर ही जनता का त्रण मिल सकता है, अतः उनका सारा विरोध असत्य, हिंसा और दुराग्रह से था। उनका उद्देश्य जीवन के प्रति आशा पैदा करना था।

कबीर का तू चित वे, तेरा च्यता होई,
अण च्यता हरि जो करै, जो तोहि च्यंत नहो।

महात्मा कबीर शोकग्रस्त जनता को सांत्वना देते हैं "तुम चिंता क्यों करते हो ? सारी चिंता छोड़कर प्रभु स्मरण करो।"

केवल सत्य विचारा, जिनका सदा अहार,
करे कबीर सुनो भई साधो, तरे सहित परिवार।

उनके अनुसार जो सत्यवादी होता है, उसका तो भला होता ही है, साथ- साथ उसके सारे परिवार का भी भला होता है और वे लोग सुख पाते हैं। वह कहते हैं, सारे अनर्थों की जड़, असत्य और अन्याय है, इनका निर्मूल होने पर ही शुभ की कल्पना की जा सकती है। इसी अध्यात्म का सहारा लेकर हिंदू- मुस्लिम के भेद- भाव को मिटाने का प्रयत्न किया था, इसके साथ- साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। इसके साथ- साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। आज के परिवेश में भी इन्हीं उपायों की आवश्यकता है।

सांप्रदायिक मतभेदों या दंगों का कारण अज्ञान या नासमझी है। इस नासमझी या अज्ञान को दूर करने के लिए कबीर दास द्वारा बताए गए उपायों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। कबीर की वाणी ही समस्त समस्याओं का निवारण करने में समर्थ है।

ऊँच- नीच, जाति- पाँति का भेद मिटाकर सबको एक समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया। आज के संदर्भ में भी इसी चीज की जरूरत है।

गुप्त प्रगट है एकै दुधा, काको कहिए वामन- शुद्रा
झूठो गर्व भूलो मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई। ।

वर्तमान समस्याएँ चाहे सांप्रदायिक हो चाहे वैयक्तिक, सबका समुचित समाधान नैतिक मूल्य प्रस्तुत करते हैं।

कबीर दर्शन में जाति- धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्र मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दीवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान- पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन

ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र- मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुए था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक, जो कुछ भी देखा- सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै। ।

कबीर दास अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन- साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख- आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास आध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्त्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों करने और जन- समुदाय में सुख- शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रूप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण- व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस- पास, तरह- तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर- घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद- भाव, ऊँच- नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों में आग लगी, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावा अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है। "

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति- विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता।" नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है–पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर- पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से आध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर- साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है, अत: आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्व कल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी, अत: आज भी कबीर साहित्य

की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरूरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या संप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैंकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ- चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कही- न- कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती हैं। लाखों-करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरुक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई॥

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान॥

महात्मा के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो ईमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुखी और असहनीय हो रहा है। आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है। प्रेम के महत्त्व को कबीर साहब इस प्रकार बताते हैं –

पोथी पढ़ि- पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढ़ाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो॥
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिंदू- मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने आवश्यक है। कबीर ने धार्मिक रुढ़ियों, उपासना संबंधी मूढ मान्यताओं तथा मंदिर- मस्जिद विष्यक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरु भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन- संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख- शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा- पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुदर इसी में नौ लख तारा।

गुरु के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दुखों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरु भक्ति रखकर साधन पथ पर चलने वाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कंलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो- चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। इसी तत्त्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती है।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढ़ग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाया,
रोम- रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही "प्रेम' सब कुछ है, जिसका पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रूपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक-दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक मात्र मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्में थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण- व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण- व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जोकि ब्राह्मण- व्यवस्था के विरुद्ध थी। आपने जिस तरह ब्राह्मण- व्यवस्था के गढ़ में काशी

में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, "हरिजन सई न जाति'' भक्त के समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया। वह नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं –

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान। । "

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक कीलिन विल्सन ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि "आउट साइडर" कहलाया, क्योंकि ये कवि रूढ़ियों अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण- विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान है।

"जौ पै करता बरण बिचारै।
तौं जनमत तीनि डांडी किन सारे। ।
उत्पत्ति ब्यंद कहाँ थै आया, जोति धरि अरु लगी माया।
नहिं कोइ उँचा नहिं कोइ नीचे, जाका लंड तांही का सींचा। ।
जो तू वामन वमनीं जाया, तो आने बाट हवे काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकनीं जाया तो भीतरि खतना क्यूनें करवाया। ।

पंडित को वह वटूक्ति सुनाते हुए कहते हैं, जैसे गधा चंदन का भार वहन करता है, पर उसकी सुगंधि से अभिमूढ़ नहीं होता। उसी तरह पंडित भी वेद पुराण पढ़कर राम नाम के वास्तविक तत्त्व नहीं पाता।

पांडे कौन कुमति तोहि लगि, तू राम न जपहि आभागा।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा। ।
राम नाम तत समझत नाहीं, अति अरे मुखि धारा।
वेद पढता का यह फल पाडै राबधटि देखौ रामा। ।

कबीर के अनुसार ब्राह्मण को तत्त्वानुभव नहीं होने के कारण उसकी बात कोई नहीं मानता है।

पंडित संति कहि रहे, कहा न मानै कोई।
ओ अशाध एका कहै, भारी अचिरज होई॥

कबीर साहब ब्राह्मण को जाति- पाँति बाँटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण का ज्ञान बासी है और उसका व्यक्तित्त्व पाखंडपूर्ण है –

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा- दुल्हिन मिल गए, फीको पड़ी बारात।

तत्कालीन ब्राह्मण समाज के ज्ञान पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं –

चार यूं वेद पढ़ाई करि, हरि सूंन लाया हेत।
बाँलि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत॥

कबीर के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, लेकिन समाज ने उसे रूढ़ियों में जकड़ लिया है तथा भाँति- भाँति की क्यारियाँ गढ़ ली गई है। इस प्रकार एक क्यारी का बिखरा, दूसरी क्यारी में नहीं जा सकता है, इस प्रकार कवि जातिवाद और छुआ- छूत सबको पाखंड मानते हैं और कहते हैं –

पाड़ोसी सू रुसणां, तिल- तिल सुख की होणि।
पंडित भए सरखगी, पाँणी पीवें छाँणि॥

पंडित सरावगी हो गए हैं और पानी को छान कर पीने लगे हैं, अर्थात् वे ढ़ोंग करते हैं और दूसरे के धर्म की अनावश्यक नुक्ता- चीनी और छान- बीन करते रहते हैं। आपके अनुसार पंडित का गोरख धंधा बटमारी और डकैती है। पंडित ने इस संसार को पाषाण- मूर्तियों से भर दिया है और इसी के आधार पर पैसा कमाता है।

काजल केरि कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट॥

कबीर साहब जात- पाँत की तुलना में कर्म को श्रेष्ठ मानते हैं –

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जेकरणी उँच न होई
सोवन कलस सुरै भरया, साधू निंधा सोई॥

अपनी पूरी जिंदगी में कबीर ने सामाजिक कुरीतियों के झाड़- झंखाड़ को साफ करने और उच्चतर मानव का पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया।

कबीर साहब का भक्ति में अत्याधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर

साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिलाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं –

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय।।

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग कार एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार काबा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

काबा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम।।

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक पाथेवय को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

2

कबीर जीवन परिचय

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है। वे हिन्दू धर्म व इस्लाम के आलोचक थे। उन्होंने सामाजिक अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।

महात्मा कबीर का जन्म-काल

महात्मा कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब भारतीय समाज और धर्म का स्वरूप अधंकारमय हो रहा था। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्थाएँ सोचनीय हो गयी थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मांधता से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी और दूसरी तरफ हिंदूओं के कर्मकांडों, विधानों एवं पाखंडों से धर्म- बल का ह्रास हो रहा था। जनता के भीतर भक्ति- भावनाओं का सम्यक् प्रचार नहीं हो रहा था। सिद्धों के पाखंडपूर्ण वचन, समाज में वासना को प्रश्रय दे रहे थे।

नाथपंथियों के अलख निरंजन में लोगों का हृदय रम नहीं रहा था। ज्ञान और भक्ति दोनों तत्त्व केवल ऊपर के कुछ धनी- मनी, पढ़े- लिखे की बपौती के रूप में दिखाई दे रहा था। ऐसे नाजुक समय में एक बड़े एवं भारी समन्वयकारी महात्मा की आवश्यकता समाज को थी, जो राम और रहीम के नाम पर आज्ञानतावश लड़ने वाले लोगों को सच्चा रास्ता दिखा सके। ऐसे ही संघर्ष के समय में, मस्तमौला कबीर का प्रार्दुभाव हुआ।

जन्म

महात्मा कबीर के जन्म के विषय में भिन्न- भिन्न मत हैं। 'कबीर कसौटी' में इनका जन्म संवत् 1455 दिया गया है। ''भक्ति- सुधा- बिंदु- स्वाद'' में इनका जन्मकाल संवत् 1451 से संवत् 1552 के बीच माना गया है। ''कबीर- चरित्र- बाँध'' में इसकी चर्चा कुछ इस तरह की गई है, संवत् चौदह सौ पचपन (1455) विक्रमी ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन, एक प्रकाश रूप में सत्य पुरुष काशी के ''लहर तारा'' (लहर तालाब) में उतरे। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया। समस्त तालाब प्रकाश से जगमगा गया। हर तरफ प्रकाश- ही- प्रकाश दिखने लगा, फिर वह प्रकाश तालाब में ठहर गया। उस समय तालाब पर बैठे अष्टानंद वैष्णव आश्चर्यमय प्रकाश को देखकर आश्चर्य- चकित हो गये। लहर तालाब में महा- ज्योति फैल चुकी थी। अष्टानंद जी ने यह सारी बातें स्वामी रामानंद जी को बतलायी, तो स्वामी जी ने कहा की वह प्रकाश एक ऐसा प्रकाश है, जिसका फल शीघ्र ही तुमको देखने और सुनने को मिलेगा तथा देखना, उसकी धूम मच जाएगी।

एक दिन वह प्रकाश एक बालक के रूप में जल के ऊपर कमल- पुष्पों पर बच्चे के रूप में पाँव फेंकने लगा। इस प्रकार यह पुस्तक कबीर के जन्म की चर्चा इस प्रकार करता है –

''चौदह सौ पचपन गये, चंद्रवार, एक ठाट ठये।
जेठ सुदी बरसायत को पूनरमासी प्रकट भये। ।''

जन्म स्थान

कबीर ने अपने को काशी का जुलाहा कहा है। कबीर पंथी के अनुसार उनका निवास स्थान काशी था। बाद में, कबीर एक समय काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। ऐसा वह स्वयं कहते हैं –

''सकल जनम शिवपुरी गंवाया।
मरती बार मगहर उठि आया। । ''

कहा जाता है कि कबीर का पूरा जीवन काशी में ही गुजरा, लेकिन वह मरने के समय मगहर चले गए थे। कबीर वहाँ जाकर दु:खी थे। वह न चाहकर भी, मगहर गए थे।

''अबकहु राम कवन गति मोरी।
तजीले बनारस मति भई मोरी। । ''

कहा जाता है कि कबीर के शत्रुओं ने उनको मगहर जाने के लिए मजबूर किया था। वह चाहते थे कि आपकी मुक्ति न हो पाए, परंतु कबीर तो काशी मरन से नहीं, राम की भक्ति से मुक्ति पाना चाहते थे –

''जौ काशी तन तजै कबीरा
तो रामै कौन निहोटा। ''

कबीर के माता- पिता

कबीर के माता- पिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। 'नीमा' और 'नीरू' की कोख से यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी, या लहर तालाब के समीप विधवा ब्राह्मणी की पाप- संतान के रूप में आकर यह पतितपावन हुए थे, ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरू ने केवल इनका पालन- पोषण ही किया था। एक किवदंती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था।

एक जगह कबीर ने कहा है –

'जाति जुलाहा नाम कबीरा
बनि बनि फिरो उदासी।'

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत्यु से बहुत दु:खी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत 'गुसाई' थे। ग्रंथ साहब के एक पद से विदित होता है कि कबीर अपने वयनकार्य की उपेक्षा करके हरिनाम के रस में ही लीन रहते थे। उनकी माता को नित्य कोश घड़ा लेकर लीपना पड़ता था। जबसे कबीर ने माला ली थी, उसकी माता को कभी सुख नहीं मिला। इस कारण वह बहुत खीज गई थी। इससे यह बात सामने आती है कि उनकी भक्ति एवं संत- संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट था।

स्त्री और संतान

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक 'लोक से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था।'

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोड़ि के, घर ले आया माल।

कबीर की पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बानियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात- दिन मुड़ियों का जमघट रहने से बच्चों को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं –

सुनि अंघली लोई बंपीर।
इन मुड़ियन भजि सरन कबीर। ।

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल- ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रूप में भी किया है। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं –

'कहत कबीर सुनहु रे लोई।
हरि बिन राखन हार न कोई। । '

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है –

'नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार। । '

लहरतरब प्रगट्या स्थल

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी)जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

'काशी में परगट भये, रामानंद चेताये'

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित कथन है कि कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी। वह वैष्णव संत आचार्य रामानंद को अपना अपना गुरु बनाना चाहते थे लेकिन उन्होंने कबीर को शिष्य बनाने से मना कर दिया लेकिन कबीर ने अपने मन में ठान लिया कि स्वामी रामानंद को ही हर कीमत पर अपना गुरु बनाऊंगा, इसके लिए कबीर के मन में एक विचार आया कि स्वामी रामानंद जी सुबह चार बजे गंगा स्नान करने जाते हैं उसके पहले ही उनके जाने के मार्ग में सीढ़ियों लेट जाऊंगा और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियां उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

काशी में परगट भये, रामानंद चेताये
जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए, क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम सांस ली। आज भी वहां पर मजार व समाधी स्थित है।

भाषा

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियाँ

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह 'बीजक ' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं : साखी, सबद (पद), रमैनी

साखी: संस्कृत ' साक्षी, शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे

का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद गेय पद है जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है, क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

धर्म के प्रति

साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। 'उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुंह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसै'

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के वह प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-परीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएं कीं इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुंचे। वहां रामकृष्ण का छोटा-सा मन्दिर था। वहां के संत भगवान गोस्वामी के जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक

पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान। करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान। । '

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोये हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा सें प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंवाद्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार। वा ते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार। ।

कबीर के राम

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सब में व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है',

लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया-'निर्गुण राम जपहु रे भाई। ' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में मां मान लेते हैं और खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं कि

"संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छांड़ि क्यूं बहिसे!" नहीं है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है : ' कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ। कबीर की साधना ''मानने से नहीं, ''जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्त्व ही राम

हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्त्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं :-

'प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोइ पीउ सोई जीउ' - जो पीउ है, वही जीव है। इसी कारण उनकी पूरी साधना ''हंस उबारन आए की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत् सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। उसको पाने की इतनी उत्कण्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अर्न्तमन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोई पीउ है सोई जीउ है। तब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी। '

कबीर के जीवन से संबंधित कुछ चमत्कारी घटनाएँ

नीमा और नीरू को बालक कबीर का मिलना

नीरू जुलाहा काशी नगरी में रहता था। एक दिन नीरू अपना गवना लेने के लिए, ससुराल गया। नीरू अपनी पत्नी नीमा को लेकर आ रहा था। रास्ते में नीमा को प्यास लगी। वे लोग पानी पीने के लिए लहर तालाब पर गए। पानी पीने के पश्चात्, नीमा जैसे ही उठी, उसने तालाब में कमल के पुष्पों पर एक अति सुंदर बालक को हाथ- पाँव मारते देखा। वह बहुत ही प्रसन्न हुई। वह तालाब के भीतर गई और बालक को अपनी गोद में लेकर बाहर आकर, नीरू के निकट गई और कहा –

'नीरू नाम जुलाहा, गमन लिये घर जाय।
तासु नारि बढ़ श्रागिनी, जल में बालक पाय। '

जुलाहे ने बालक को देखकर पूछा, यह किसका है और तुम कहाँ से उठाकर लाई हो ? नीमा ने कहा कि इसे उसने तालाब में पाया है। नीरू ने कहा,

इसे जहाँ से लायी है, वहीं रख आ। मगर नीमा ने कहा कि इतने सुंदर बच्चे को मैं अपने पास रखुँगी। नीरू ने अपनी स्त्री से कहा, मुझ पर लोग हँसेंगे, कहेंगे कि गवना में मैं अपनी स्त्री के साथ, बालक ले आया। नीरू को तत्कालीन समाज के लोगों का डर लग रहा था। उसने कहा –

'नीरू देख रिसवाई, बालक देतू डार।
सब कुटम्ब हांसी करे, हांसी मारे परिवार। '

नीमा, नीरू की कोई बात मानने को तैयार नहीं हुई, तब नीरू उसको मारने- पीटने पर तत्पर हो गया और झिड़कियाँ देने लगा। नीमा अपनी जगह पर चुपचाप खड़ी सोच रही थी, इतने में बालक स्वयं ही बोल उठा,

'तब साहब हूँ कारिया, लेचल अपने धाम।
युक्ति संदेश सुनाई हौं, मैं आयो यही काम।
पूरब जनम तुम ब्राह्मन, सुरति बिसारी मौहि।
पिछली प्रीति के कारने, दरसन दीनो तोहि। '

हे नीमा ! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म के प्रेम के कारण तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मुझको मत फेंको और अपने घर ले चलो। यदि तुम मुझको अपने घर ले गयी, तो मैं तुमको आवागमन (जन्म- मरण) के झंझट से छुड़ा करके, मुक्त कर दूँगा। तुम्हारे सारे दुख व संताप मैं हर लूँगा।

बालक के इस प्रकार बोलने से, नीमा निर्भय हो गयी और अपने पति से नहीं डरी। तब नीरू भी बालक को सुनकर कुछ नहीं बोला –

कर गहि बगि उठाइया, लीन्हों कंठ लगाया
नारि पुरुष दोउ हरषिया, रंक महा धन पाय।
वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक बालक को लेकर अपने घर चले गए।

बालक का नामकरण करने ब्राह्मण का आना

काशी के लोगों को जब मालूम हुआ कि नीरू अपनी पत्नी के साथ एक बालक भी लाया है, तो लोग जमा होकर हंसने लगे। नीरू ने तब बालक के बारे में सारी बातें सुनाई।

नीरू बालक का नाम धरवाने के लिए, ब्राह्मण के पास गया। जब ब्राह्मण अपना पत्र लिए नाम के बारे में विचार ही रहा था कि बालक ने कहा, ऐ ब्राह्मण ! मेरा नाम कबीर है। दूसरा नाम रखने की चिंता मत करो। यह बात सुनकर वहाँ

इकट्ठा सभी लोग चकित हो गए। हर तरफ इस बात की चर्चा होने लगी कि नीरू के घर में एक बच्चा आया है, वह बातें करता है।

साखी – कासी उमगी गुल श्रया, मोमिनका का घर घेर।
कोई कहे ब्राह्मा विष्णु हे, कोई कह इंद्र कुबेर। ।
कोई कहन वरुन धर्मराय हे, कोई कोइ कह इस,
सोलह कला सुमार गति, को कहे जगदीश। ।

काजी का नाम धरने आना

ब्राह्मण के चले जाने पर, नीरू ने काजी को बुलाया और बालक का नाम रखने के लिए कहा। काजी, कुरान और दूसरी किताबें खोलकर बालक का नाम देखने लगा। कुरान में काजी को चार नाम मिले - कबीर, अकबर, किबरा और किबरिया। ये चारों नाम देखकर काजी अपने दांतों के तले उँगलियाँ दबाने लगा। वह हैरान होकर बार- बार कुरान खोलकर देखता था, लेकिन समस्त कुरान काजी को इन्हीं चार नामों से भरा दिखाई देता था। काजी के मन में अत्यंत संदेह उत्पन्न होने लगा कि ये चारों नाम तो खुदा के हैं। काजी गंभीर चिंता में डूब गया कि क्या करना चाहिए। हमारे धर्म की प्रतिष्ठा दाव पर लग गई है। इस बात को गरीबदास ने इस प्रकार कहा है–

काजी गये कुरान ले, धर लड़के का नाव।
अच्छर अच्छरों में फुरा, धन कबीर वहि जाँव
सकल कुरान कबीर है, हरफ लिखे जो लेख।
काशी के काजी कहै, गई दीन की टेक।

जब काशी के सभी काजियों को यह समाचार मिला, तो सभी बड़े ही चिंतित हुए। वे कहने लगे कि अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि समस्त कुरान में कबीर ही कबीर है। सभी सोचते रहे, क्या उपाय किया जाए कि इस जुलाहे के पुत्र का इतना बड़ा नाम न रखा जा सके। पुनः सभी काजियों ने कुरान खोलकर देखा, तो अब भी वही चारों नाम दिखाई दे रहा था।

काजियों द्वारा नीरू को कबीर की हत्या कर देने की सलाह देना

काशी के काजी नाम के बारे में कोई दूसरा उपाय न ढूंढ़ सकें, तो आपस में विचार करके नीरू से कहा कि तू इस बालक को अपने घर के भीतर ले जाकर मार डाल, नहीं तो तू काफिर हो जाएगा। जुलाहा काजियों की बात में आ गया और वह कबीर को मार डालने के लिए अपने घर के भीतर ले गया। नीरू

जुलाहे ने कबीर के गले पर छुरी मारना शुरू कर दिया। वह छुरी गले में एक ओर से दूसरी ओर पार निकल गयी, न कोई जख्म हुआ और न ही खून का एक बूंद भी निकला। इतना ही नहीं गर्दन पर छुरी का चिह्न भी नहीं था। तब कबीर बोले कि, ऐ नीरू ! मेरा कोई माता- पिता नहीं है, न मैं जन्मता हूँ, न मरता हूँ, न मुझको कोई मार सकता है, न मैं किसी को मार सकता हूँ और न ही मेरा शरीर है। तुमको दिखाई देने वाला शरीर तुम्हारी भावना मात्र शब्दरूपी है। यह बात सुनकर जुलाहा और जुलाहिन अत्यंत भयभीत हुए। इसके साथ- साथ समस्त काशी में हुल्लड़ मच गया कि बालक वार्तालाप करता है।

अंत में विवश होकर, काजियों ने बालक का नाम कबीर ही रखा। कोई इसको बदल न सका।

बालक कबीर का दूध पीना

बालक कबीर, नीरू के घर में कुछ खाते- पीते नहीं थे। इसके बावजूद उसके शरीर में किसी तरह की कोई कमी नहीं हो रही थी। नीरू और नीमा को इस बात पर चिंता हुई। वे दोनों सभी लोगों से पूछते- फिरते कि बालक क्यों नहीं खाता है, उसको खाना खिलाने का क्या उपाय हो सकता है ?

दूध पिवे न अन्न भखे, नहि पलने झूलंत।
अधर अमान ध्यान में, कमल कला फूलंत। ।

नीमा और नीरू की बात सुनकर प्रत्येक व्यक्तियों ने अपने- अपने विचार दिये और कई ने तो प्रयोग भी करके देखा, पर कोई लाभ नहीं।

अंत में किसी व्यक्ति ने नीरू को सलाह दी कि रामानंद जी से मिलना चाहिए। स्वामी रामानंद जी को स्थानीय लोग बड़े सिद्ध व त्रिकालदर्शी मानते थे। नीमा- नीरू स्वामी जी के आश्रम गये, किंतु इन लोगों को वहाँ प्रवेश नहीं मिला, क्योंकि स्वामी जी के आश्रम में हिंदूओं की भी बहुत- सी जातियों को प्रवेश नहीं मिलता था। कहा जाता है कि स्वामी जी शुद्रो को देखना भी नहीं चाहते थे। नीमा- नीरू तो मुसलमान थे। मिलने का कोई अवसर न देखकर इन दोनों ने अपनी बात दूसरे व्यक्ति के माध्यम से स्वामी जी के पास पहुँचायी। स्वामी जी ने ध्यान धर कर बतलाया कि एक कोरी (कुमारी) बछिया लाकर बालक की दृष्टि के सामने खड़ी कर दो। उस बछिया से जो दूध निकलेगा, वह दूध बालक को पिलाने से वह पियेगा। नीमा और नीरू ने ऐसा ही किया। उस दिन से बालक कबीर दूध पीने लगा।

कबीर की बाल-लीला

कबीर के काल में, काशी में जलन के रोग का प्रकोप था। एक दिन बालक कबीर धूल- मिट्टी से खेल रहे थे। उसी समय एक वृद्धा स्त्री आयी और कबीर से अपने जलन- रोग का उपचार करने को बोली। बालक कबीर ने थोड़ी- सी धूल वृद्धा पर डाल दी। वह आरोग्य होकर खुशी- खुशी घर चली गई।

नीरू के घर मांस आने से कबीर का अंतर्ध्यान हो जाना

आस- पास के मुसलमानों ने, एक व्यक्ति को बहका कर नीरू के घर मेहमान बनाकर भेजा और उस मेहमान से कह दिया कि वह नीरू को मांस खिलाने को कहेगा। उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया। वह मांस खिलाने का हठ करने लगा। नीरू के लाख समझाने और कहने पर भी वह नहीं माना। अंत में नीरू जाति- समाज के डर से मांस लाने को तैयार हो गया। किसी ने सच ही कहा है –

'जाति- पाति हुर्मत के गाहक।
तिनको डर उर पैठयो नाहक॥ '

कबीर जान गए कि नीरू ने मांस लाया है। संध्या में सभी लड़के खेलकर अपने- अपने घर आये, किंतु कबीर नहीं आये। नीमा ने आस- पास के लड़कों से कबीर के बारे में पूछा, उन लोगों से कुछ पता न चल पाया, तो दोनों बहुत अधिक विकल हो गए। रातभर उन लोगों ने ना तो कुछ खाया- पिया और न ही सोए। भोर होते ही नीरू कबीर को खोजने के लिए निकल पड़ा। आस- पास के सभी नगर में नीरू ने कबीर को खोजा, किंतु कबीर का कुछ भी अता- पता न चला। अंत में नीरू पागलों की तरह हर आने- जाने वालों से कबीर के बारे में पूछता- पूछता, इधर- उधर भटकने लगा। नीरू को इस बात का डर था कि अगर वह कबीर को साथ लिए बिना घर जाएगा, तो नीमा प्राण त्याग देगी। वह स्वयं को दोषी ठहराते हुए, गंगाजी में डूबने के लिए कूद गया।

नीरू गंगाजी की गहराइयों में गोता खाने लगा। अचानक उसे एहसास हुआ कि किसी ने उसका हाथ पकड़ कर बाहर कर दिया। नीरू ने जब आँख खोलकर देखा, तो सामने कबीर खड़े थे। वह बहुत प्रसन्न हुआ और कबीर साहब को गले लगाने, उसके नजदीक जाने लगा, किंतु कबीर साहब उससे दूर

हो गये। वे कहने लगे, खबरदार ! मेरे शरीर को हाथ मत लगाना। तुम महाभ्रष्ट हो। कबीर के कहने का भाव समझ कर नीरू वात्सल्य भाव से बालक को फिर यह कहता हुआ पकड़ने का प्रयत्न करने लगा –

कहु प्यारे काल्ह कहँ रहेऊ
हम खोजत थकित होइ गयऊ। ।

कबीर साहब पीछे हटते हुए बोले –

कहहिं कबीर हम उहां न जाहीं
तुम आभच्छ आनेहु घरमाही। ।

अब नीरू को कबीर की बात समझ में आई और बोला –

कहे नीरू कर जोरि अधीना
अब तो चूक सही हम कीना। ।
अबकी चूक बकसिये मोही
हाथ जारिके विनवौं तोहीं।।

यह कहते हुए नीरू रोने लगा और नकरगड़ी करने लगा, तब कबीर साहब ने कहा –

ऐसे हम नहिं जैबे भाई
घर आँगन सब लीपौ जाई। ।
बर्तन अशुच दूर सब करिहौ
करि अस्नान वस्तर तन फेरिहौ। ।
ऐसी करिहाँ जाई तुम, तौ पाइहो वहि ठाँउ।
नाहीं तो घर को को कहै, ताजि जाऊँ यह गाउँ। ।

इतना सुनकर नीरू मन- ही- मन बहुत डरा और उसी क्षण घर पहुँचा तथा कबीर की आज्ञानुसार, सफाई करके कबीर के आने की प्रतीक्षा करने लगा। तब कबीर नीरू के घर प्रकट हुए और नीरू तथा नीमा से कहा –

नीरू सुनहु श्रवण दे, फेर जो ऐसी होई।
तब कछु मेरी दोष नहीं, जैदो जन्म बिगोई। ।

दोनों स्त्री- पुरुष ने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और कहा अब ऐसी भूल कभी न होगी। आप हमको न त्यागें।

कबीर साहब की सुन्नत

कुछ दिनों के बाद, समस्त जुलाहे इकट्ठा होकर नीरू से कहने लगे कि अपने रसुल अल्लाह की आज्ञा के अनुसार, अब तुम अपने पुत्र का खतना

(मुसलमानी) कराओ। एक- एक कर सभी जुलाहे नीरू के घर इकट्ठा हुए और काजी को बुलाया गया। काजी ने नाई को कबीर साहब का खतना करने का हुक्म दिया। नाई उस्तरा लेकर कबीर साहब के पास पहुँचा। कबीर साहब ने नाई को पाँच लिंग दिखलाए और नाई से कहा, इन पाँचों में से जिसको चाहो, तू काट ले। यह स्थिति देखकर नाई भयभीत हो गया और तुरंत वहाँ से भाग गया। इस प्रकार खतना न हो सका।

कुर्बानी

एक बार कबीर साहब छोटे- छोटे बच्चों के साथ खेल रहे थे। इसी बीच काजी ने गाय की कुर्बानी करने का प्रबंध किया, लेकिन कबीर साहब को इस बात की भनक मिल गई और खेलना छोड़ कर दौड़ते हुए गाय के पास पहुँच गए। आपने देखा कि काजी गाय को समाप्त कर चुका था। आपने काजी को अनेक उपदेश दिये, साथ- ही- साथ काजी को लज्जित भी किया। काजी लज्जाकर अपने अपराध के निमित क्षमा का प्रार्थी हुआ। आपने समाप्त गाय को जीवित कर दिया और अंतर्ध्यान हो गए।

कबीर साहब को नीरू के घर से भगाने का प्रयत्न

नीरू के घर सिद्ध बालक को देखकर, उसकी प्रसिद्धि से आस-पास के लोग नीरू से जलते थे। नीरू के द्वारा अपने घर में सदा माँस न लाने की प्रतिज्ञा कर लेने से, मांसाहारी मुसलमान उससे बहुत क्षुब्ध हो गये थे। इन सभी मुसलमानों ने उसे धर्म भ्रष्ट होते, समझकर नीरू को सुधारने की फिक्र करना प्रारंभ कर दिया।

काशी के जोलहन मिली, आनि कियों परपंच।
सबै कहैं नीरू तुम क्या बैठे निश्चिन्त।
बेटे की तुम सुनति कराओ
पंचों का तुम हाथ पुलाओ। ।
काजी मुलना को बुलवाओ
शैनी और शराब मँगाओ। ।

इस प्रकार की उनकी सुनकर नीरू ने कान पर हाथ रखकर कहा –

नरु कहे सुन्नति बखाओ
पै नहिं गैनी गला कटाओ। ।

नीरू की यह बात सुनकर उसकी जाति-बिरादरी के लोगों ने उससे क्रोधित होकर कहा –

जोलहा सब तब कहैं रिसाई।
वया नीरू तुम अकिल गवाँई। ।
अपने कुल की रीति न छोड़ो।
कुल परिवार करिहें सब भांडो। ।
गैनी बिना कैसे बनै, मुसलमान की रीति।
पीर पैगम्बर रुठिहैं, खता खाहुगे मति। ।

यह सुनकर नीरू ने कहा –

नीरू कहै सुनो रे भाई।
ऐसो करौं तो पूत गँवाई। ।
एक बार घर आमिष आना,
तेहि कारण सुत आया बिगाना। ।
क्या रुठे क्या खुशी हो, पीर पैगम्बर झारि।
गौधात मैं ना करो, नीरू कहै पुकारि॥

सभी जुलाहे कबीर साहब के अंतर्ध्यान होने को जान चुके थे। वह यह भी जानते थे कि नीरू के घर मांस होने से कबीर साहब अंतर्ध्यान हो जाते हैं, इसलिए सब विदेशियों और पक्षपातियों ने मिलकर नीरू को बहकाकर उसके द्वारा गोहत्या कराना चाहा, जिससे कबीर साहब नीरू के घर से रुष्ट होकर चले जाए। किंतु जब सब जुलाहों तथा काजी मुसलमानों ने देखा कि नीरू उनकी चाल में नहीं पड़ने वाला है, तो वह दूसरी चाल चले और छल से कहा –

जोलहन मिली छल से कहयो, और करु सब साज
नीरू तुमरे कारने गैनी आयड बाज। ।

उन लोगों ने विचार किया कि नीरू के अनजाने में गाय जबह करेंगे, जिसको देखकर कबीर वहाँ से भाग जाएँ। काजी सहित अन्य मुसलमानों ने अवसर पाकर चुपचाप गाय मंगाकर, जबह कर दिया। नीरू इस काण्ड से एकदम अज्ञान थे। यद्यपि उन दुष्टों के इस गुप्त काण्ड को किसी ने नहीं जाना, परंतु अंतर्ध्यानी सर्वज्ञ कबीर साहब ने इस बात को जान लिया। वह बच्चों के साथ खेल रहे थे। खेल छोड़कर वहाँ से दौड़े और गाय हत्या के स्थान पर पहुँचे तथा काजी से कहा –

हो काजी यह किन फरमाये, किनके माता तुम छुरी चलाये।
जिसका छीर जु पीजिए तिसको कहिए माए। ।
तिसपर छुरी चलाऊँ, किन यह दिया दिढाय। ।

यह सुन काजी ने उत्तर दिया –

सुन कबीर बडन सो, होत आई यह बात।
गोस कुतुब औ औलिया, हजरत नबी जमात॥

कबीर साहब ने काजी की बात सुनकर कहा, ऐ काजी ! और मुल्ला तथा दूसरे मुसलमानों! तुम लोग गफलत में पड़कर नाना प्रकार से जीवों को सताने को धर्म मानते हो। वास्तव में यह तुमको नर्क तक ले जाने वाला रास्ता है।

आदम आदि सुधि नहिं पायी। मामा हौब्बा कहते आयी। ।
तब नहिं होते तुरुक औ हिंदू। मायको रुधिन पिता को बिंदू। ।
तब नहिं होते गाय कसाई। तब बिसमिल किन फरमायी। ।
तब नहिं रहो कुल औ जाति। दोजख विहिरत कहाँ उत्पाती। ।
मन मसले की खबर न जाने। मति भुलान हो छीन बखाने। ।
संयागेकर गुण रखे, बिन जोगे गुण जाय।
जिह्मवा स्वाद कारने, क्रीन्हे बहुत उपास। ।

कबीर साहब की इन बातों को सुनकर काजी मुल्ला सभी बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि नीरू का यह लड़का काफिर हो गया है। ये नबी पैगम्बर पीर औलिया सबको तुच्छ समझता है और स्वयं को बड़ा ज्ञानी। उनके क्रोध को देखकर नीमा और नीरू दोनों बहुत डर गये, किंतु कबीर साहब ने निर्भय होकर विनयपूर्वक काजी से पूछने लगे –

केहि कारण तुम इहवां आयौ।
यहि जगह किन तुमहिं बुलाया

काजी ने कहा –

जोलहन मोहिं बुलायऊ, तोहो सुन्नत काज।
अब तुम मुस्लिम होयके, रोजा करहु निमाज। ।
कलमा पढ़ो नबी का, छोड़हु कुफुर की बात।
तब तुम बहिश्तहि जाहुगे बैठहु नबी जमात। ।

काजी की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा –

जिन्ह कमला कलिमांहि पढ़ाया। कुदरत खोज उनहु नंहि पाया।
करमत करम करै करतूती। वेद किताब भाया सब रीती। ।

कमरत सो जों गाय औतरिया। करमत सो जो नामसिं धरिया।
करमत सुन्निति और जनेऊ। हिंदू तुरुक न जाने भेऊ। ।
पानी पवन संजोयके, रचिया इ उत्पात।
सून्द्यहिं सुरत समानिया, कासो कहिये जात। ।

काजी, मुल्लाहों व कबीर के आपस में बहस को देखकर वहाँ भीड़ जमा हो गयी। भीड़ में से एक हिंदू ने कबीर से कहा कि तुमको अपने धर्म का नियम मानना चाहिए। काजी और मुल्ला, जो कि धर्म के रक्षक और उपदेशक हैं, उनकी आज्ञा से तुमको अपनी सुन्नत करवा लेनी चाहिए। जैसे देखो हमारे धर्म में भी प्रत्येक बालक की जनेऊ होती है, वरन् उसको शूद्र के तुल्य माना जाता है। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने एक मत होकर कहा कि इसको पकड़ कर बाँधों और सुन्नत कर दो। काजी ने लोगों की बातों से सहमत होकर कुछ मुस्टंडे मुसलमानों को आज्ञा दिया कि कबीर को रस्सी से बाँधों। काजी के आज्ञानुसार बाँधकर, सभी लोग नाई की खोज करने लगे। नाई पहले ही भयभीत होकर भाग चुका था। काजी घबरा कर इधर- उधर भागता हुआ नाई को ढूंढ़ रहा था। उस समय काजी को कबीर साहब ने कहा –

काजी तुम कौन किताब बखाना।
झंखत बकत रहो निसि बासर मति एको नहि जाना। ।
सकति न मानो सुनति करत हो मैं न बेदांगा भाई।
जो खुदाय तुव सुनति करत तो आप काटि किन आई। ।

इतना कहकर कबीर साहब उठ खड़े हुए। उनके शरीर से बंधा सभी बाँध खुद ही खुलकर गिर पड़ा। रस्सी को टूटता देखकर, सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये। कबीर ने काजी से कहा –

कहे कबीर सुनोहो काजी ! यह सब अहे शैतानी बाजी।
छिरू ! छिरू ! क्या इसी को मुसलमान कहते हैं।
यदि तरीका जो मुसलिम होई।
तौपै दोजख परै न कोई। ।

कबीर ने मुस्कराते हुए काजी से कहा, तुमको स्वयं मुसलमानी का पता नहीं है और मुझको मुसलमान बनाने आये हो ––

तुम तो मुस्लिम भये नहिं भाई। कैसे मुस्लिम करहू आयी।

काजी के करतूत और उनकी बयानी को देखकर कबीर ने एक बार फिर कहा –

भूला वे अहमक नदाना। हरदम रामहिं न जाना। । टेक। ।
बरबस आनिके गाय पछाए, गला काहि जिख आप लिया।
जीता जीव मुर्दा करि डाला, तिसको कहत हलाल किया।
जाहि मांस को पाक कहत है, ताकि उत्पत्ति सुन भाई।
रज बीरज सो मास उपाना, सोई नापाक तुम खाई।
अपनो दोष कहत नाहिं अहमक, कहत हमारे बड़ेन किया।
उनकी खुब तुम्हारी गर्दन, जिन तुमको उपदेश दिया।
सियाही गयी सुफैदी आयी, दिल सुकेद अजंहु न हुआ।
रोजा नामाज बांग बया कीजै, हजुरे भीतर बैठ मुआ।
पण्डित वेद पुरान पढ़ै, मुलना पढ़ै जो कुराना।
कहै कबीर वे नरके गये, गिन हरदम रामहिं ना जाना।

इतना कहकर कबीर साहब मरी हुई गाय के पास गये –

बहुविधि से काजी को समझायी। महापाप जीव घात बहायी।
फिर कबीर गढिए जायी। मरी गाय तिहिं काल जिवाभी। ।

जैसे ही कबीर साहब ने गाय के पीठ पर हाथ फेरा, गाय जीवित होकर उठ बैठी। कबीर साहब ने गाय को गंगा में स्नान कराकर, नगर में स्वतंत्र घूमने को छोड़ दिया और स्वयं भी नीरू और नीमा के घर को उसी दिन से छोड़ दिया। कई दिनों तक नीरू और नीमा को कबीर साहब का दर्शन न हुआ। ये दोनों उनके विरह में, बहुत अधिक विकल होकर पागलों की तरह जहाँ- तहाँ घूमने लगे। अंत में करुणामय कबीर ने करुणा करके दोनों को बाहर किसी दूसरे स्थान पर दर्शन दिया। फिर भी उनके घर नहीं गये। कुछ भक्तों ने काशी से बाहर एक कुटी बांध दी। वे इसी कुटी में रहने लगे। कुछ दिनों के बाद नीमा और नीरू भी वहीं आकर रहने लगे।

बालक कबीर का काफिर की व्याख्या करना

बालक कबीर साहब जब छोटे- छोटे बच्चों के साथ खेलते थे, तब सदैव 'राम- राम', 'गोविंद- गोविंद', 'हरि- हरि' कहा करते थे। यह सुनकर मुसलमान लोग कहते थे कि यह लड़का कट्टर काफिर होगा। बालक कबीर ने उन मुसलमानों को जवाब दिया कि –

- काफिर वह होगा, जो दूसरों का माल लूटता होगा।
- काफिर वह होगा, जो कपट भेष बनाकर संसार को ठगता होगा।

– काफिर वह होगा, जो निर्दोष जीवों को काटता होगा।
– काफिर वह होगा, जो मांस खाता होगा।
– काफिर वह होगा, जो मदिरा पान करता होगा।
– काफिर वह होगा, जो दुराचार तथा बटमारी करता होगा।
फिर मैं कैसे काफिर हूँ ?
उसी समय आपने यह साखी कहा –

गला काटकर बिसमिल करें, ते काफिर बेबूझ।
औरन को काफिर कहै, अपनी कुफ्र न सूझ। ।

बालक कबीर वैष्णव के रूप में

बालक कबीर ने एक बार अपने गले में यज्ञोपवीत व माथे पर तिलक डाल लिया। ब्राह्मणों ने देखा तो कहने लगे कि यह तो मेरा धर्म है, तुम्हारा धर्म तो दूसरा है। तूने यह वैष्णव वेष कैसे बना लिया ? और तू ''राम– राम'' ''गोविंद– गोविंद'' क्यों कहता है ? यह तो तुम्हारा धर्म नहीं है। तब कबीर साहब ने उन लोगों को उत्तर देते हुए कहा कि गोविंद व राम तो हमारे हृदय में बसे हुए हैं। तुम्हारे कैसे हुए ? तुम गीता पढ़ते हो, परंतु सांसारिक धन के लिए सदैव द्वार– द्वार दौड़ते ही रहते हो और हम तो गोविंद के अतिरिक्त अन्य किसी को जानते ही नहीं हैं। आपने ये शब्द कहा–

मेरी लिह्मवा बिस्तू लैनाचरायन हिरदे बसे गोविंद।
जम द्वारे जब पूछि परे तब का करे मुकुंदा। । टेक। ।
हम घर सूत तनै नित ताना, कंठ जनेऊ तुम्हारे।
तुम नित बांचत गीता गायत्री, गोविंद हिरदे हमारे। ।
हम गोरु तुम ग्वाल गुसाई, जनम जनम रखवहो।
कबहिं न बार सो पार चराये, तुम कैसे खसम हमारे। ।
तुम बामन हम काशी के जुलहा, बूझो मेरा गयाना।
तुम खोजत नित भुपति राजे, हरि संग मेरा ध्याना। ।

मुसलमानों और हिंदूओं, दोनों का अपने– अपने धर्म के पैगम्बर व भगवान के नाम पर अड़े रहने और ''राम– राम'' ''गोविंद– गोविंद'' को अपना भगवान कहने पर कबीर ने कहा –

भाई दुई जगदीश कहांते आये कौने मति भरमाया।
अल्लाह राम करीमा केलव हरि हजरत नाम धराया। ।
गहना एक कनक ते बनता तामें भख न दूजा।

कहव कहन सुनत को दुई कर आये इक निमाज इक पूजा। ।
वहि महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये।
कोई हिंदू काई तुरक कहखे एक जमीं पर रहिये। ।
वेद किताब पढ़ैं व खुतबा वे मुलना वे पांडे।
विगत विगत कै नाम धरावें एक भटिया के भांडे। ।
कहै कबीर वे दूनो भूले रामे किन्हु न पाया।
वे खसिया व गाय कटावें वादे जन्म गवांया। ।

कबीर साहब का रामानंद स्वामी वैष्णव के पास जाना

कबीर साहब जब पाँच वर्ष के हुए, तो आपने स्वयं को शिष्य बनाने के लिए रामानंद स्वामी के पास समाचार भेजा, लेकिन रामानंद स्वामी ने कबीर को शिष्य बनाने से इंकार कर दिया, क्योंकि स्वामी रामानंद जी कबीर को शुद्र मानते थे।

कबीर वचन

रामानंद गुरुदिच्छा दीजे। गुरुदच्छिना हमसे लीजो। ।

रामानंद वचन

सूद्र के कान न लगा भाई। तीन लोक में मोर बड़ायी।

स्वामी रामानंद जी के स्पष्ट इनकार कर दिये जाने के पश्चात्, कबीर साहब वहाँ से चुपचाप लौट आये।

स्वामी रामानंद का कबीर साहब को शिष्य स्वीकार करना

कबीर साहब कुछ लोगों के साथ रामानंद स्वामी के ठिकाने पर आये। रामानंद स्वामी उस समय किसी से नहीं मिलते थे और नहीं किसी को देखते थे। लोगों ने कबीर साहब को पर्दे के पीछे खड़ा कर दिया। कबीर ने स्वामी से कहा कि स्वामी जी आपने मुझे अपना शिष्य बना लिया है? स्वामी जी यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गए और पूछा कब ? कबीर साहब ने गंगा नदी के स्नान को जाते हुए सीढ़ियों पर स्वामी के खड़ाऊँ की चोट को विस्तारपूर्वक बताया और कहा कि आपने मेरे माथे पर हाथ रखकर राम- राम पढ़ने को कहा था। मैं उसी दिन से आपको गुरु मानकर ''राम- राम'' पढ़ता रहता हूँ। रामानंद स्वामी जी ने कहा उस समय तो बहुत छोटा बच्चा सीढ़ियों पर मिला था। कबीर

साहब ने उत्तर दिया कि स्वामी जी वह मैं ही था और वैसा ही बच्चा बनकर स्वामी की गुफा के भीतर गए और उनके चरणों पर गिरकर कहने लगे कि मैं उस समय ऐसा ही था। कबीर साहब को इस तरह देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। तब स्वामी जी के सबसे बड़े चेले अनंतानंद ने स्वामी जी को समझाया और कहा कि यह बालक मनुष्य नहीं, बल्कि सिद्ध का अवतार है। इस तरह स्वामी जी मान गए और कबीर साहब को अपना शिष्य बना लिया।

कबीर साहब को गुरु के समान मानना

स्वामी रामानंद जी के सभी शिष्य कबीर साहब को गुरु के समान मानते थे। सभी आपको अत्यंत मर्यादा एवं प्रतिष्ठा दिया करते थे। स्वयं आप भी सभी गुरु भाई से नितांत ही नम्रतापूर्वक मिलते थे। स्वामी रामानंद जी के सभी चौदह सौ चौरासी शिष्य आपके आज्ञाकारी थे और आपको सभी का सरदार बनाया गया था।

राम-रहीम सब एक

शिष्य बनने के दूसरे दिन, कबीर साहब सवेरे से ही स्नान तिलक के पश्चात्, ध्यान में लग गए। आपने गले में एक माला एवं जनेऊ डाला और द्वादश तिलक करके साक्षात् रामानंदियों के समान वेश बना लिया। वैष्णवों के जैसा वेश देखकर माता नीमा ने कहा कि बेटा तुम क्या कर रहे हो ? किसने तुम्हारी बुद्धि ऐसी फेर दी है कि अपने धर्म- कर्म को छोड़कर दूसरे धर्म वालों की राह पर चल पड़े हो ? कबीर साहब ने नीमा ओर नीरू दोनों से अत्यंत नम्र भाव से निवेदन करते हुए कहा कि धर्म को अलग- अलग बाँटना एक भ्रम है। कोई किसी का धर्म नहीं है। सत्य पुरुष सबके लिए एक है। उसका किसी से भेद-भाव नहीं हैं। वही सब का रचने वाला है। उसके सिवाय कोई कर्ता- धर्ता और कोई विधाता नहीं। राम- रहीम सब उसी के नाम हैं। सभी साधु, पीर, फकीर और पैगम्बर अपने- अपने ढ़ंग से उसका नाम लेते हैं।

संत महात्मा की सेवा करना

कबीर साहब संत एवं महात्मा की सेवा करने में सदैव आगे- आगे रहते। आपके घर में जब कोई संत- महात्मा आते, तो उनके भोजन बनाने के लिए चौका लगवाते। कोरे बर्तन में विशुद्ध भोजन का सामान तैयार करके देते। अपने

से जहाँ तक संभव हो पाता, उनकी सेवा- चाकरी करते थे। आपकी प्रेम स्नेह रखने वाली माता भी, आपके संत एवं महात्माओं की सेवा करते- करते उकता जाती थी, पर कभी भी ऐसा नहीं होता कि माता कबीर साहब की बात काट दे या फिर आपके मन के विरुद्ध कोई काम कर दे।

कबीर कौन है?

रामानंद स्वामी एक दिन मानसिक ध्यान में मग्न थे। एकाएक ठाकुर की माला छोटी हो गई। रामानंद स्वामी जी को अधिक चिंता हुई कि ठाकुर को माला कैसे पहनाया जाए ? तब कबीर साहब स्वामी जी के मन की बात जानकर बोले कि स्वामी जी माला की गाँठ खोलकर ठाकुर जी को पहनाओ। स्वामी रामानंद जी ने ऐसा ही किया। इस प्रकार के अनेक कौतुकों को देखकर स्वामी जी की इच्छा हुई कि यह कबीर है कौन ? जो ऐसे- ऐसे कौतुक किया करता है। रामानंद स्वामी जी ने इसका उत्तर पाने के लिए ठाकुर का ध्यान किया, तब स्वामी जी ने ध्यान में देखा कि ठाकुर के सिंहासन पर रखी ठाकुर की मूर्ति के सिर पर कबीर साहब का सिंहासन रखा हुआ है।

कबीर साहब की ऐसी बड़ाई एवं इतना प्रताप देखकर स्वामी जी कबीर साहब की बड़ी मर्यादा करने लगे। स्वामी जी, उनकी प्रशंसा अपने मिलने- जुलने वालों में किया करते थे। इस प्रकार कबीर साहब भी अपने गुरु का गुण गाया करते थे।

आपके दर्शन से सिकंदर लोदी सुल्तान के शरीर की जलन दूर होना

बादशाह सिकंदर लोदी के शरीर में जलन का रोग था। इस रोग के कारण बादशाह रात- दिन बेचैन रहता था। संवत् 1545 विक्रमी में बादशाह काशी नगर पहुँचा। बादशाह ने अपने लोगों से पूछा कि काशी नगरी में कोई ऐसा व्यक्ति है, जो मुझे इस रोग से मुक्ति दिला सके ? कबीर साहब से द्वेष रखने वाले लोगों ने बादशाह को बताया कि कबीर नामक एक फकीर हैं, जो श्रीमान को आरोग्य कर सकता है। उन लोगों ने कबीर साहब का नाम इसलिए बताया कि बादशाह कबीर को देखकर क्रोधित हो जाएगा और मरवा डालेगा। बादशाह ने आज्ञा दी कि तुरंत कबीर को बुलाया जाए।

कुछ लोग कबीर साहब को बुलाने पहुँचे कबीर साहब बादशाह के सामने आए। बादशाह को जैसे ही आपका दर्शन हुआ, बादशाह उसी समय रोग मुक्त

हो गया। बादशाह का शरीर ठंडा हो गया और बड़ा सुख मिला। बादशाह आपके सिंहासन से खड़ा हुआ और बड़े ही आदर के साथ कबीर को अपने पास ही बैठा लिया।

बादशाह का कबीर साहब पर विश्वास

बादशाह सिकंदर लोदी के पास कबीर साहब को बैठा देखकर बैरियों के दाँत खट्टे हो गये। कबीर साहब से बैर रखने वाले ब्राह्मण एवं काजी ने बादशाह से फरियाद करने लगे कि यह बहुत बड़ा काफिर है। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म से इन्कार करता है और अपने आपको परमेश्वर कहता है। यह अपने आपको समस्त संसार का रचयिता समझता है। ये बातें सुनकर बादशाह ने कबीर से पूछा–

गरीबदास का वचन

शाह सिकंदर बोलता, कह कबीर तू कौन।
गरीब दास गुजरै नहीं, कैसे बैठा मौन।।

कबीर साहब का उत्तर

हम ही अलख अल्लाह है, कुतुब गोस गुरु पीर।
गरीबदास मालिक धनी, हमरो नाम कबीर। ।
मैं कबीर सर्वजा हूँ, सकल हमारी जात।
गरीबदास पिंडदान में, युगन- युगन सँग साथ। ।
शाह सिकंदर देखकर, बहुत भए मिसकीन।
गरीबदास गति शेर की, धरकीं दोनों दीन। ।

जब कबीर साहब ने भरे हुए शाही इजलास में यह स्वीकर करते हुए कहा कि मैं समस्त संसार का रचयिता हूँ। तब बादशाह ने एक गाय मँगवायी। उसको अपने सामने हलाल करवाया और कबीर साहब से इस मरी हुई गाय को जिंदा करने के लिए कहा। कबीर साहब गाय को जिंदा करने के लिए तैयार हो गए। आपने गाय को थापी दी तथा चुटकी मारी। गाय उसी समय खड़ी हो गई। उसका सब घाव दर्द मिट गया। इस कौतुक को देखकर बादशाह और उसके सभासद आश्चर्यचकित हो गए। बादशाह को आप पर विशेष विश्वास हुआ।

शेखतकी का कबीर को मरवाने का प्रयत्न

बादशाह सिकंदर लोदी के मुंह से, कबीर साहब की प्रशंसा सुनकर शेखतकी को बहुत क्रोध हुआ। वह नहीं चाहता था कि कबीर साहब पर बादशाह इस प्रकार विश्वास करें। अवसर को भांपते हुए आपसे शत्रुता रखने वाले ब्राह्मणों एवं मुसलमानों ने शेखतकी से शिकायत की और आपको मरवाने का सुझाव दिया।

शेखतकी बादशाह के पास गया और कहा कि ऐ ! सुल्तान तू मेरा कहना मानकर कबीर के प्राणघात की आज्ञा दे दे। यदि तूने उसको न मरवाया, तो मैं तुमको शाप दूँगा, जिससे तेरी संपत्ति तथा तेरा प्राण का विनाश हो जाएगा। बादशाह ने शेखतकी को समझाने की कोशिश की। बादशाह ने कहा कि उस फकीर ने आपका क्या बिगाड़ा है, क्यों आप उसको मारने के लिए कह रहे हैं?

कबीर सागर –

कहो कबीर को मारन ताईं। कुछ न हमारे यहाँ बसाड़े
पीर फकीर जात अल्लाह। मेरो जोर न पहुँचे नाहाज

बादशाह –

अहो पीर जी तुम वए का। अपने मन में करो विबेका।
इन कुछ तुमरो नाहिं बिगारा। काहे तुमने कुफ्र प्रसारा।
बुजर्ग सबने की फरमावे। जोर जुल्म कुछ ताहि न भावो।

साखी –

कहा हमारा कीजिए, छोड़ दीजिए शर।
सुलह कुल्ह दे बैठिए, अल्लाह और निहार। ।
कहे कती सुल्तान सुन, तुझे नहीं कुछ दुख।
जो मैं कहूँ सो मानिए, का मेरो संतोष। ।
कहे सिकंदर पीर सुन, मेरी शिर वरु लहु।
पकड़ कबीर न मारिए, यह माँगे मोहि देहूं। ।

रमेनी –

सुंते भी तकी क्रोध प्रजारा। शिरसे ताज जमींन मारा।
निपट विकल देखा तेही भाई। तब हम शाह से कह बुझाई। ।
कहैं कबीर सुनो सुलताना। करो पीर को वचन प्रमाना। ।

साखी –

पीर कहे सो करो तुम, हम नहीं कुछ त्रस।
हमहूं कहें रात नाम बल। कहें कबीर सुदास। ।

रमैनी।

कहे सिकंदर सुनोजी पीरा। मन मानैसो करो कबीरा। ।

शेखतकी कबीर को मरवाना चाहता था। बादशाह नहीं चाहता था कि ऐसे फकीर को मरवाया जाए। बादशाह सिकंदर ने यहाँ तक कह दिया था कि चाहे तुम मेरा सिर ले लो, मगर मैं कबीर को मरवाने को नहीं कहूँगा। शेखतकी माना नहीं, तब कबीर साहब ने बादशाह को कहा कि ऐ ! सुल्तान आप पीर का कहा मानें। हमें इससे कुछ भी त्रास नहीं है। यह सुनकर बादशाह ने अपने पीर से कहा, जो चाहो कबीर के साथ करो, मगर देखो, जो फकीर को मारता है, उसका भला नहीं होता है।

शेखतकी ने वहाँ मौजूद काजी, पंडित को बाँधने के लिए कह दिया। कबीर साहब को हाथ- पाँव बाँधकर गंगाजी में डाल दिया। कबीर साहब गंगाजल पर आसन बांधे दिखाई दिये। यह देखकर बादशाह और दूसरे लोगों ने 'धन्य कबीर', 'धन्य कबीर' कहना आरंभ कर दिया। शेखतकी शोक से हाथ मलने लगा। बादशाह ने शेखतकी से कहा, यह परमात्मा है, इसको मत मारिए। शेख नहीं माना और कबीर को दुबारा देग में बंद कर दिया। देग के मुंह को भली- भांति बंद अग्नि पर चढ़ा दिया। इतने में बादशाह ने खबर भिजवायी कि आपने किसको बंद किया है ? कबीर साहब तो मेरे पास बैठे हैं। शेख ने देग खोलकर देखा, तो उसे खाली पाया।

अब शेख ने कहा, अगर तुम आग से बच गए हो, तो मैं तुम पर विश्वास ले आऊँगा। कबीर साहब ने कहा कि आपकी जो इच्छा हो करें। शेख जी ने बहुत- सा काष्ठ मँगाया और कबीर साहब का हाथ-पाँव बांधकर उसमें डाल दिया। कबीर को आग में डालते ही वह ठंड़ी हो गयी। आग को ठंड़ा होते देख, शेख बहुत क्रोधित हो गया। उसने तलवार निकाल लिया और आपको मारना आरंभ कर दिया। शेख आप पर लगातार वार करता रहा, लेकिन एक भी वार आपके शरीर पर नहीं पड़ा। सभी ऐसे निकल गया, जैसे वायु के मध्य से कृपाण निकल कर पार कर जाती है। इस प्रकार कबीर के शरीर पर तनिक भी चिह्न न लगा। शेख जी मारते- मारते थक गए, तो आपको कुँए में डाल दिया। कुँए को ईंट तथा पत्थरों से भरना शुरू कर दिया। यहाँ भी शेख आपका कुछ न बिगाड़ सका। तोप पर बाँधकर उड़वाया, पर तोप में जल भर गया।

कबीर का गंगा में बह रहे मुर्दे को जीवित करना

शेखतकी की लाख कोशिशों के बावजूद आपको कुछ न होना और आपकी कई लीलाएँ देखकर सुल्तान सिकंदर बहुत प्रभावित हो गया। बादशाह ने आपको बड़ा मान- सम्मान दिया। इसी क्रम में वह आपको अपने साथ इलाहाबाद ले गया। शेख भी आप लोगों के साथ गया था। गंगा के तट पर शेख ने आपसे कहा कि अगर मुर्दा को जिंदा कर देंगे, तो मैं आप पर विश्वास कर लूँगा। बहते हुए एक मुर्दे को देख कबीर ने इशारा किया और कहा ऐ मुर्दे ! परमेश्वर के प्रभाव से उठ जा, उसी समय मुर्दा उठ खड़ा हुआ। वह मुर्दा, एक छोटे लड़के के रूप में जीवित हो गया। आपने उस लड़के का नाम कमाल रखा। बाद में वही लड़का आपका पुत्र कहलाया।

शेखतकी और सिकंदर लोदी ने आपको परमेश्वर माना

शेखतकी और सुल्तान सिकंदर लोदी ने कबीर की कुल बावन (52) लीलाएँ देखी। दोनों इन लीलाओं से बहुत प्रभावित हो गए। इनको इतना विश्वास हुआ कि दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये और निवेदन करते हुए कहा कि ऐ कबीर! आप सच में परमेश्वर हैं तथा आप ही हमारे गुरु पीर हैं। हमारा अपराध क्षमा करें। हमको शाप मत दीजिए। कबीर ने कहा, आप लोगों ने मेरे साथ कुछ नहीं किया, आप लोगों को मैं कभी शाप नहीं दूँगा।

हम्द साखी –

ऐ कबीर ! तुम अल्लाह हो, पलक बीच परवाह।
गरीबदास कर जोर के, ऐसे कहता शाह। ।
तुम दयालू दरवेश हो, घर आए नर रुप।
गरीब दास शाह यों कहे, बादशाह जहान भूप। ।
उठे कबीर करम किया, बरसे फूल आकाश।
गरीबदास से ली चले, चंवर करे रेदास। ।

3

कबीर कालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ

कबीर का काल संक्राति का काल था। तत्कालीन राजनीतिक वातावरण पूर्ण रूप से विषाक्त हो चुका था। इस समय की राजनीतिक व्यवस्था को बहुत अंश तक मुल्ला और पुजारी प्रेरित करते थे। हिंदू- मुसलमानों के भीतर भी निरंतर ईर्ष्या और द्वेष का बोलबाला था। तत्कालीन समृद्ध धर्मो बौद्ध, जैन, शैव एवं वैष्णवों के अंदर विभिन्न प्रकार की शाखाएँ निकल रही थी। सभी धर्मो के ठेकेदार आपस में लड़ने एवं झगड़ने में व्यस्त थे।

लोदी वंश का सर्वाधिक यशस्वी सुल्तान, सिकंदर शाह सन् 1489 ई. में गद्दी पर बैठा। सिकंदर को घरेलू परिस्थिति एवं कट्टर मुसलमानों का कड़ा विरोध सहना पड़ा। दुहरे विरोध के कारण वह अत्यंत असहिष्णु हो उठा था। सिकंदर शाह के तत्कालीन समाज में आंतरिक संघर्षो एवं विविध धार्मिक मतभेदों के कारण, भारतीय संस्कृति की केंद्रीय दृष्टि समाप्त प्रायः हो गयी थी। इसी जन शोषित समाज में लौह पुरुष महात्मा कबीर का जन्म हुआ। शक्तिशाली लोगों ने ऐसे- ऐसे कानून बना लिए थे, जो कानून से बड़े थे और इसके द्वारा वह लोगों का शोषण किया करते थे। धर्म की आड़ में ये शोषक वर्ग अपनी चालाकी को देवी विधान से जोड़ देता था। तत्कालीन शासन- तंत्र और धर्म-

तंत्र को देखते हुए, महात्मा कबीर ने जो कहा, इससे उसकी बगावत झलकती है–

दर की बात कहो दरवेसा बादशाह है कौन भेसा
कहाँ कूच कर हि मुकाया, मैं तोहि पूछा मुसलमाना
लाल जर्द का ताना- बाना कौन सुरत का करहु सलामा।

नियमानुसार शासनतंत्र के कुछ वैधानिक नियम होते हैं, जिनके तहत सरकारी कार्यों को संपादित किया जाता है, लेकिन कबीर के काल में ऐसा कोई नियम नहीं था, इसी लिए वे कहते हैं ''बादशाह तुम्हारा वेश क्या है ? और तुम्हारा मूल्य क्या है ? तुम्हारी गति कहाँ है ? किस सूरत को तुम सलाम करते हो? इस प्रकार राजनीतिक अराजकता तथा घोर अन्याय देखकर उनका हृदय वेदना से द्रवित हो उठता है।'' धार्मिक कट्टरता के अंतर्गत मनमाने रूप से शासन तंत्र चल रहा था, जिसमें साधारण जनता का शोषण बुरी तरह हो रहा था। कबीर के लिए यह स्थिति असहनीय हो रही थी।

काजी काज करहु तुम कैसा, घर- घर जब हकरा बहु बैठा।
बकरी मुरगी किंह फरमाया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।

कबीर पूछते हैं काजी तुम्हारा क्या नाम है ? तुम घर पर जबह करते हो ? किसके हुक्म से तुम छुरी चलाते हो ?

दर्द न जानहु, पीर कहावहु, पोथा पढ़ी-पढ़ी जग भरमाबहु

काजी तुम पीर कहलाते हो, लेकिन दूसरों का दर्द नहीं समझते हो। गलत बातें पढ़-पढ़ कर और सुनाकर तुम समाज के लोगों को भ्रम में डालते हो।

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज में धर्म की आड़ में सब तरह के अन्याय और अनुचित कार्य हो रहे थे। निरीह जनता के पास इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाने की शक्ति नहीं थी। कबीर ने इस चालाक लोक वेद समर्पित देवी विधान के खिलाफ आवाज उठायी।

दिन को रोजा रहत है, राज हनत हो गया,
मेहि खून, वह वंदगी, क्योंकर खुशी खुदाय।

दिन में रोजा का व्रत रखते हो और रात में गाय की हत्या करते हो ? एक ओर खून जैसा पाप और दूसरी ओर इश बंदगी। इससे भगवान कभी भी प्रसन्न

नहीं हो सकते। इस प्रकार एक गरीब कामगार कबीर ने शोषक वर्ग के शिक्षितों साधन संपन्नों के खिलाफ एक जंग को बिगुल बजाया।

इक दिन ऐसा होइगा, सब लोग परै बिछोई।
राजा-रानी छत्रपति, सावधान किन होई। ।

कबीर के कथनानुसार परिवर्तन सृष्टि का नियम है। राजा हमेशा बदलता रहता है। एक की तूती हमेशा नहीं बोलती है। मरण को स्वीकार करना ही पड़ता है, अत: राजभोग प्राप्त करके गर्व नहीं करना चाहिए, अत्याचार नहीं करना चाहिए। यह बात सर्वमान्य है कि एक दिन सब राज- पाठ छोड़कर यहाँ से प्रस्थान करना ही होगा।

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बघें जंजीर। ।

कबीर साहब मृत्यु के सम्मुख राजा, रंक और फकीर में कुछ भेदभाव नहीं मानते हैं। उनके अनुसार सभी को एक दिन मरना होगा।

कहा हमार गढि दृढ़ बांधों, निसिवासर हहियो होशियार
ये कलि गुरु बड़े परपंची, डोरि ठगोरी सब जगमार।

कबीर चाहते थे कि सभी व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार अपनी आँखों से करे। धर्म के नाम पर मनुष्य और मनुष्य के बीच गहरी खाई खोदने वालों से कबीर साहब को सख्त नफरत होती थी। उन्होंने ऐसे तत्त्वों को बड़ी निर्भयता से अस्वीकार कर दिया था।

ऐसा लोग न देखा भाई, भुला फिरै लिए गुफलाई।
महादेव को पंथ चलावै ऐसे बड़ै महंत कहावै।
हाट बजाए लावे तारी, कच्चे सिद्ध न माया प्यारी।

महात्मा कबीर हैरान होकर लोगों से कहा करते थे, भाई यह कैसा योग है। महादेव के नाम परपंथ चलाया जाता है। लोग बड़े- बड़े महंत बनते हैं। हाटे बजारे समाधि लगाते हैं और मौका मिलते ही लोगों को लूटने का प्रयास करते हैं। ऐसे पाखंडी लोगों का वे पर्दाफाश करते हैं।

भये निखत लोभ मन ढाना, सोना पहिरि लजावे बाना।
चोरा- चोरी कींह बटोरा, गाँव पाय जस चलै चकोरा।

लोगों को गलत बातें ठीक लगती थी और अच्छी बातें विष। सत्य की आवाज उठाने का साहस किसी के पास न रह गया था।

नीम कीट जस नीम प्यारा
विष को अमृत कहत गवारा।

वे कहते हैं, सत्य से बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं है और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है। जिनका हृदय शुद्ध है, वहाँ ईश का निवास है।

सत बराबर तप नहीं, झूठ बराबर नहीं पाप,
ताके हृदय साँच हैं, जाके हृदय आप।

राजाओं की गलत और दोषपूर्ण नीति के कारण देश जर्जर हो गया और प्रजा असह्य कष्ट उठाने को बेबश थी। राज नेता धर्म की आड़ में अत्याचार करते थे। कबीर की दृष्टि में तत्कालीन शासक यमराज से कम नहीं थे।

राजा देश बड़ौ परपंची, रैयत रहत उजारी,
इतते उत, उतते इत रहु, यम की सौढ़ सवारी,
घर के खसम बधिक वे राजा,
परजा क्या छोंकौ, विचारा।

कबीर के समय में ही शासको की नादानी के चलते, राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद और पुनः दौलताबाद से दिल्ली बदलने के कारण अपार धन और जन को हानि हुई थी तथा प्रजा तबाह हो गई थी।

महात्मा कबीर साहब ने इस जर्जर स्थिति एवं विषम परिस्थिति से जनता को उबारने के लिए एक प्रकार जेहाद छेड़ दिया था। एक क्रांतिकारी नेता के रूप में कबीर समाज के स्तर पर अपनी आवाज को बुलंद करने लगे। काजी, मुल्लाओं एवं पुजारियों के साथ- साथ शासकों को धिक्कारते और अपना विरोध प्रकट किया, जिसके फलस्वरूप कबीर को राजद्रोह करने का आरोप लगाकर तरह- तरह से प्रताड़ित किया गया।

''एकै जनी जन संसार'' कहकर कबीर ने मानव मात्र में एकता का संचार किया तथा एक ऐसी समझदारी पैदा करने की चेष्टा की, कि लोग अपने उत्सको पहचान कर वैमन्षय की पीड़ा से मुक्ति पा सकें और मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रेम कर सकें।

आधुनिक राजनीतिक परिस्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि आज कबीर साहब होते, तो उनको निर्भीक रूप से राजनैतिक दलों एवं व्यक्तियों से तगड़ा विरोध रहता, क्योंकि आग की परिस्थिति अपेक्षाकृत अधिक नाजुक है।

आज कबीर साहब तो नहीं है, मगर उनका साहित्य अवश्य है, आज की राजनैतिक स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार लाने के लिए कबीर साहित्य से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है। कबीर साहित्य का आधार नीति और सत्य है और इसी आधार पर निर्मित राजसत्ता से राष्ट्र की प्रगति और जनता की खुशहाली संभव है। उनका साहित्य सांप्रदायिक सहिष्णुता के भाव से इतना परिपूर्ण है कि वह हमारे लिए आज भी पथ-प्रदर्शन का आकाश दीप बना हुआ है। आज कबीर साहित्य को जन- जन तक प्रसार एवं प्रचार करने की आवश्यकता है, ताकि सभी लोग इसको जान सकें और स्वयं को शोषण से मुक्ति एवं समाज में सहिष्णुता बना सकें।

4

कबीर का साहित्यिक परिचय

कबीर साहब निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के संबंध में स्वयं 'कबीर- बीजक' की एक साखी में बताया है। जिसमें कहा गया है कि न तो मैंने लेखनी हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युगों की बातों को उन्होंने केवल अपने मुँह द्वारा जता दिया है –

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात। ।

संत मत के समस्त कवियों में, कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखी और न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था। लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता एवं उत्कृष्टता से कही है कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है। ये संदेश आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, पथ- प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी आपके संदेश काव्यमय हैं। तात्विक विचारों को इन पद्यों के सहारे सरलतापूर्वक प्रकट कर देना

ही आपका एक मात्र लक्ष्य था –

तुम्ह जिन जानों गीत हे यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समझाता, आतम साधन सार रे। ।

कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करने वाले तथा मर्यादा के रक्षक कवि थे। आप अपनी काव्य कृतियों के द्वारा पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

हरि जी रहे विचारिया साखी कहो कबीर।
यौ सागर में जीव हैं जे कोई पकड़ै तीर। ।

कवि के रूप में कबीर जीव के अत्यंत निकट हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सहजता को प्रमुख स्थान दिया है। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। उनके काव्य का आधार यथार्थ है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं आँख का देखा हुआ कहता हूँ और तू कागज की लेखी कहता है –

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति के समाज- सुधारक एवं प्रगतिशील दार्शनिक तथा आवश्यकतानुसार कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचनाएँ इस प्रकार कही है कि उसमें आपके व्यक्तित्त्व का पूरा- पूरा प्रतिबिंब विद्यमान है।

कबीर की प्रतिपाद्य शैली को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है – इनमें प्रथम रचनात्मक, द्वितीय आलोचनात्मक। रचनात्मक विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किया गया है। दूसरे पक्ष में वे आलोचक, सुधारक, पथ- प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उन्होंने चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

काव्य रूप एवं संक्षिप्त परिचय

कबीर की रचनाओं के बारें में कहा जाता है कि संसार के वृक्षों में जितने पत्ते हैं तथा गंगा में जितने बालू- कण हैं, उतनी ही संख्या उनकी रचनाओं की है –

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।
पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन। ।

विभिन्न समीक्षकों तथा विचारकों ने कबीर के विभिन्न संग्रहों का अध्ययन करके निम्नलिखित काव्य रूप पाये हैं –

1. साखी
2. पद
3. रमैनी
4. चौंतीसा
5. बावनी
6. विप्रमतीसी
7. वार
8. थिंती
9. चाँवर
10. बसंत
11. हिंडोला
12. बेलि
13. कहरा
14. विरहुली
15. उलटवाँसी

साखी

साखी रचना की परंपरा का प्रारंभ गुरु गोरखनाथ तथा नामदेव जी के समय से प्राप्त होता है। साखी काव्य रूप के अंतर्गत प्राप्त होने वाली, सबसे प्रथम रचना गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी है। कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। प्रतिपाद्य के एक- एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैंकड़ों साखियों की रचना की है। प्रत्येक साखी में अभिनवता को बड़ी कुशलता से प्रकट किया गया है। उन्होंने इसका प्रयोग नीति, व्यवहार, एकता, समता, ज्ञान और वैराग्य आदि की बातों को बताने के लिए किया है। अपनी साखियों में कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

कबीर की साखियों पर गोरखनाथ और नामदेव जी की साखी का प्रभाव दिखाई देता है। गोरखनाथ की तरह से कबीर ने भी अपनी सखियों में दोहा जैसे छोटे छंदों में अपने उपदेश दिये।

संत कबीर की रचनाओं में साखियाँ सर्वाधिक पायी जाती है। कबीर बीजक में 353 साखियाँ, कबीर ग्रंथावली में 919 साखियाँ हैं। आदिग्रंथ में साखियों की संख्या 243 है, जिन्हें 'लोक कहा गया है।'

प्राचीन धर्म प्रवर्त्तकों के द्वारा, साखी शब्द का प्रयोग किया गया। ये लोग जब अपने गुरुजनों की बात को अपने शिष्यों अथवा साधारणजनों को कहते, तो उसकी पवित्रता को बताने के लिए साखी शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे साखी देकर, यह सिद्ध करना चाहते थे कि इस प्रकार की दशा का अनुभव अमुक- अमुक पूर्ववर्ती गुरुजन भी कर चुके हैं, अतः प्राचीन धर्म प्रवर्तकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों के समक्ष, साक्षी रूप में उपस्थित करते समय जिस काव्य रूप का जन्म हुआ, वह साखी कहलाया।

संत कबीर की साखियाँ, निर्गुण साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न भावोन्मत्तता, उन्माद, ज्ञान और आनंद की लहरों से सराबोर है। उनकी साखियाँ ब्रह्म विद्या बोधिनी, उपनिषदों का जनसंस्करण और लोकानुभव की पिटारी है। इनमें संसार की असारता, माया मोह की मृग- तृष्णा, कामक्रोध की क्रूरता को भली- भांति दिखाया गया है। ये सांसारिक क्लेश, दुख और आपदाओं से मुक्त कराने वाली जानकारियों का भण्डार है। संत कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन उनकी साखियाँ हैं।

साखी आंखी ग्यान को समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का झगरा छुटत नाँहि॥

विषय की दृष्टि से कबीर साहब की सांखियों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान,
2. परलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान साखियाँ भी तीन प्रकार की है –

1. संतमत स्वरूप बताने वाली,
2. पाखण्डों का विरोध करने वाली,
3. व्यवहार प्रधान।

संतमत का स्वरूप बताने वाली साखियाँ –

कबीर साहब ने अपनी कुछ साखियों में संत और संतमत के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं –

निर बेरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँन्यारा रहे संतरि को अंग एह। ।

कबीर साहब की दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है –

सौंपापन कौ मूल है एक रुपैया रोक।
साधू है संग्रह करै, हारै हरि सा थोक।
संत व बांधै गाँठरी पेट समाता लेई।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगै तब दई।

संत अगर निर्धन भी हो, तो उसे मन छोटा करने की आवश्यकता नहीं है–

सठगंठी कोपीन है साधू न मानें संक।
राम अमल माता रहे गिठों इंद्र को रंक।

कबीर साहब परंपरागत रुढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्या प्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति- रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिंदू- मुसलमान दोनों में ही फैली हुई कुरीतियों का विरोध अपनी अनेक साखियों में किया है।

व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब की व्यवहार प्रधान साखियाँ, नीति और उपदेश प्रधान है। इसमें संसभू के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई हैं। इन साखियों में मानव मात्र के कल्याणकारी अनुभव का अमृत छिपा हुआ है। पर निंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, मोह, मदमत्सर, कपट आदि का निषेध करके, वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वाचन आदि के लिए आग्रह किया गया है। वे त्याज्य कुकर्मों को गिना कर बताते हैं –

गुआ, चोरी, मुखबरी, व्याज, घूस, परमान।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार। ।

विपत्ति में धैर्य धारण करने के लिए कहते है –

देह धरे का दंड है सब काहू पै होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञानकरि मूरख भुगतै रोय। ।

वह अपनी में बाबू संयम पर बल देते हुए कहते है –

ऐसी बानि बोलिए मन का आपा खोय।
ओख को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

पारलौकिक भाव प्रधान साखियाँ

संत कबीर साहब ने इस प्रकार की अपनी साखियों में नैतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक, परलौकिक इत्यादि विषयों का वर्णन किया है।

कुछ साखियाँ –

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पं तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जायें मासु।
बिन देखे वह देसकी, बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बैचत फिरे कपूर।

पद (शब्द)

संत कबीर ने अपने अनुभवों, नीतियों एवं उपदेशों का वर्णन, पदों में भी किया है। पद या शब्द भी एक काव्य रूप है, जिसको प्रमुख दो भागों में बाँटा गया है –

-- लौकिक भाव प्रधान
-- परलौकिक भाव प्रधान

लौकिक भाव प्रधान पदों में सांसारिक भावों एवं विचारों का वर्णन किया गया है। इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है –

-- धार्मिक पाखण्डों का खंडन करने वाले पद।
-- उपदेशात्मक और नीतिपरक पद।

संत कबीर जातिवाद, ऊँच- नीच की भावना एवं दिखावटी धार्मिक क्रिया- कलापों के घोर विरोधी थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों की प्रचलित मान्यताओं तथा उपासना पद्धतियों की अलग- अलग आलोचना की है। वे वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान और रहस्य को जानने पर बल देते हैं –

वेद कितेब कहौ झूठा।
झूठा जो न विचारै। ।
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी।
सकति अनुमान सुनति किरतु हो, मैं न बदौगा भाई। ।

जो खुदाई तेरि सुनति सुनति करतु है, आपुहि कटि कयों न आई।
सुनति कराय तुरुक जो होना, औरति को का कहिये। ।

रमैनी

रमैनी भी संत कबीर द्वारा गाया गया काव्य रूप है। इसमें चौपाई दो छंदों का प्रयोग किया गया है। रमैनी कबीर साहब की सैद्धांतिक रचनाएँ हैं। इसमें परमतत्त्व, रामभक्ति, जगत और ब्रह्म इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

जस तू तस तोहि कोई न जान। लोक कहै सब आनाहि आना।
वो है तैसा वोही जाने। ओही आहि आहि नहिं आने। ।

संत कबीर, राम को सभी अवतारों से परे मानते हैं –

ना दसरथ धरि औतरि आवा।
ना लंका का राव सतावा। ।
अंतर जोति सबद एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी। ।
ते तिरिये भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदि औ अंतर। ।

एक रमैनी में वे मुसलमानों से प्रश्न पूछते हैं।

दर की बात कहाँ दरबेसा। बादशाह है कवने भेष।
कहां कंच कहँ करै मुकाया। मैं तोहि पूंछा मुसलमाना। ।
लाल गरेद की नाना बना। कवर सुरहि को करहु सलाया। ।
काजी काज करहु तुम कैसा। घर- घर जबह करवाहु भैसा। ।

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्य रूप केवल 'कबीर बीजक' में ही प्रयोग किया गया है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़कर, केवल व्यंजनों के आधार पर रचनाएँ की गई हैं –

पापा पाप करै सम कोई। पाप के करे धरम नहिं होई।
पापा करै सुनहु रे भाई। हमरे से इन किछवो न पाई।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्तहि मिले तत्त सो पावै।
थाथा थाह थाहि नहिं जाई। इथिर ऊथिर नाहिं रहाई।

बावनी

बावनी वह काव्य रूप है, जिसकी द्विपदियों का प्रारंभ नागरी लिपि के बावन वर्णों में से प्रत्येक के साथ क्रमशः होता है। बावनी को इसके संगीतानुसार गाया जाने का रिवाज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से यह रचनाएँ आध्यात्मिकता से परिपूर्ण ज्ञात होता है।

ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानैं। करम भरम ले बैठि बखानै।
ग्रहन अमावस अवर दुईजा।
सांती पांति प्रयोजन पुजा। ।

विप्रमतीसी

विप्रमतीसी नामक काव्य रूप भी केवल 'कबीर बीजक' में पाया जाता है। इसमें ब्राह्मणों के दपं तथा मिथ्याभिमान की आलोचना की गई है। इसका संबंध विप्रमति (ब्राह्मणों की बुद्धि) से बताया जाता है।

ब्राह्मणों की मति की आलोचना करने के लिए, तीस पंक्तियों में गठित काव्य रूप को विप्रमतीसी कहा गया है।

वार

सप्ताह के सातों वारों (दिनों) के नामों को क्रमशः लेकर, की गई उपदेशात्मक रचनाओं वालों काव्य रूप को 'वार' कहा गया है। यह काव्य रूप की रचना केवल आदिग्रंथ में ही प्राप्त होती है।

थिंती

इस काव्य रूप का प्रयोग तिथियों के अनुसार छंद रचना करके साधना की बातें बताने के लिए किया गया है। संत कबीर का यह काव्य रूप भी केवल आदिग्रंथ में पाया जा सकता है।

चाँचर

चाँचर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित काव्य रूप है। कालीदास तथा बाणभट्ट की रचनाओं में चर्चरी गान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल

में इसको चर्चरी या चाँचरी कहा जाता था। संत कबीर ने भी अपनी रचनाओं में इसको अपनाया है। 'कबीर बीजक' में यह काव्य रूप प्राप्त होता है। कहा जाता है कि कबीर के समय में इसका पूर्ण प्रचलन था। कबीर ने इसका प्रयोग आध्यात्मिक उपदेशों को साधारण जन को पहुँचाने के लिए किया है।

जारहु जगका नेहरा, मन का बौहरा हो।
जामें सोग संतान, समुझु मन बोरा हो।
तन धन सों का गर्वसी, मन बोरा हो।
भसम- किरिमि जाकि, समुझु मन बौरा हो।
बिना मेवका देव धरा, मन बौरा हो।
बिनु करगिल की इंट, समुझु मन बौरा हो।

बसंत

संत कबीर साहब का एक अन्य काव्य रूप बसंत है। 'बीजक', 'आदिग्रंथ' और 'कबीर ग्रंथावली' तीनों में इसको देखा जा सकता है। बसंत तु में, अभितोल्लास के साथ गाई जाने वाली पद्यों को फागु, धमार, होली या बसंत कहा जाता है। लोक प्रचलित काव्य रूप को ग्रहण कर, अपने उद्देश्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए किया है। एक पत्नी अपने पति की प्रशंसा करते हुए कहती है –

भाई मोर मनुसा अती सुजान, धद्य कुटि- कुटि करत बिदान।
बड़े भोर उठि आंगन बाढ़ु, बड़े खांच ले गोबर काढ़।
बासि- भात मनुसे लीहल खाय, बड़ धोला ले पानी को गाय।
अपने तृया बाधों पाट, ले बेचौंगी हाटे हाट।
कहँहि कबिर ये हरिक काज, जोइया के डिंग रहिकवनि लाज।

हिंडोला

सावन के महीने में महिलाएँ हिंडोला झुलने के साथ- साथ, गीत भी गाती है। इसी गीत को अनेक स्थानों पर हिंडोला के नाम से जाना जाता है। संत कबीर ने इसी जन प्रचलित काव्य रूप को अपने ज्ञानोपदेश का साधन बनाया है। वह पूरे संसार को एक हिंडोला मानते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं –

भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप-पुण्य के खंभे हैं। माया ही मेरु हैं, लोभ का मरुषा है विषय का भंवरा, शुभ- अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी लगी हुई है। इस प्रकार कबीर साहब समस्त सृष्टि को इस हिंडोले पर झूलते हुए दिखाना चाहते हैं –

भरम- हिंडोला ना, झुलै सग जग आय।
पाप- पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया मोह।
लोभ मरुवा विष भँवरा, काम कीला ठानि।
सुभ- असुभ बनाय डांडी, गहैं दोनों पानि।
काम पटरिया बैठिके, को कोन झुलै आनि।
झुले तो गन गंधर्व मुनिवर, झुलै सुरपति इंद
झुलै तो नारद सारदा, झुलै व्यास फनींद।

बेलि

संत कबीर की बेलि उपदेश प्रधान काव्य रूप है। इसके अंतर्गत सांसारिक मोह ममता में फँसे जीव को उपदेश दिया गया है। 'कबीर बीजक' में दो रचनाएँ बेलि नाम से जानी जाती है। इसकी पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' टेक को बार- बार दुहराया गया है।

कबीर साहब की एक बेलि –

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जगत चोर घर मूसे, हो रमैया राम।
जो जागल सो भागल हो, रमैया राम।
सावेत गेल बिगोय, हो रमैया राम।

कहरा

कहरा काव्य रूप में क्षणिक संसार के मोह को त्याग का राम का भजन करने पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यह बताया जाता है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी- देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है। यह कबीर की रचनाओं का जन- प्रचलित रूप है –

रामनाम को संबहु बीरा, दूरि नाहिं दूरि आसा हो।
और देवका पूजहु बौरे, ई सम झूठी आसा हो।

उपर उ कहा भौ बौरे, भीटर अजदूँ कारो हो।
तनके बिरघ कहा भौ वौरे, मनुपा अजहूँ बारो हो।

बिरहुली

बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना है, जिसका अर्थ सर्प होता है। यह शब्द लोक में सर्प के विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त होता था। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। गाँव में इस प्रकार के गीतों को बिरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में विषहर और बिरहुली दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। मनरूपी सर्प के डस लेने पर कबीर ने बिरहुली कहा –

आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जरि पलौ पेड़ बिरहुली।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली। पावन पानि नहिं भूल बिरहुली।
ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली। कथिगेल जोग आपार बिरहुली।
बिषहा मंत्र ने मानै बिरहुली। गरुड़ बोले आपार बिरहुली।

उलटवाँसी

बंधी बधाई विशिष्ट अभिव्यंजना शैली के रूप में, उलटवाँसी भी एक काव्य रूप है। इसमें आध्यात्मिक बातों का लोक विपरीत ढ़ंग से वर्णन किया जाता है। इसमें वक्तव्य विषय को प्रस्तुत करने का एक विशेष ढ़ंग होता है –

तन खोजै तब पावै रे।
उल्टी चाल चले गे प्राणी, सो सरजै घर आवेरो
धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया:
अम्बर बरसै धरती भीजे, यहु जानैं सब कोई।
धरती बरसे अम्बर भीजे, बूझे बिरला कोई।
मैं सामने पीव गोहनि आई।
पंच जना मिलिमंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई।

सामान्यरूप में कबीर साहब ने जन- प्रचलित काव्य रूप को अपनाया है। जन- प्रचलित होने के कारण ही सिंहों, माथों, संतों और भक्तों के द्वारा इनको ग्रहण किया गया।

विचारों और भखों के साथ ही, काव्य रूपों के क्षेत्र में भी कबीर साहब को आदर्श गुरु तथा मार्गदर्शक माना गया है। परवर्ती संतों तथा भक्तों ने उनके विचारों और भावों के साथ-साथ काव्य रूपों को भी अपनाया। कबीर साहब ने इन काव्य रूपों को अपना करके महान और अमर बना दिया।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में सांकेतिक, प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रूपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटवाँसियों के सुंदर उदाहरण पाए जाते हैं।

5

कबीर की साखी

हिंदी साहित्य में कबीर का व्यक्तित्त्व अनुपम है। गोस्वामी तुलसीदास को छोड़ कर इतना महिमामण्डित व्यक्तित्त्व 'कबीर' के सिवा अन्य किसी का नहीं है। कबीर की उत्पत्ति के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कुछ लोगों के अनुसार वे जगद्गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा ताल के पास फेंक आयी। उसे नीरू नाम का जुलाहा अपने घर ले आया। उसीने उसका पालन-पोषण किया। बाद में यही बालक कबीर कहलाया। कतिपय कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर की उत्पत्ति काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुई। एक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार किसी योगी के औरस तथा प्रतीति नामक देवाङ्गना के गर्भ से भक्तराज प्रह्लाद ही संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को कबीर के रूप में प्रकट हुए थे। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानन्द के प्रभाव से उन्हें हिंदू धर्म की बातें मालूम हुई।

अन्य जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि कबीर ने हिंदू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिंदू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयंगम कर लिया।

जनश्रुति के अनुसार उन्हें एक पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली थी। इतने लोगों की परवरिश करने के लिये उन्हें अपने करघे पर काफी काम करना पड़ता था। साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-

'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। '

कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। विशप जी.एच. वेस्टकॉट ने कबीर के 84 ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की तो रामदास गौड ने 'हिंदूत्व' में 71 पुस्तकें गिनायी हैं।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं- रमैनी, सबद और सारवी यह पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है।

कबीर परमात्मा को मित्र, माता, पिता और पति के रूप में देखते हैं। यही तो मनुष्य के सर्वाधिक निकट रहते हैं। वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, हिंदु मैं राम की बहुरिया' तो
कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुँच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे।

कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

वृद्धावस्था में यश और कीर्ति की मार ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा-सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
'करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान। । '

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोदे हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा सें प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंबाध्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी–

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौंपहार।
था ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार। ।

कबीर के दर्शन पर शोध 18वीं शताब्दी में आरम्भ हो चुका था किन्तु उसका वैज्ञानिक विवेचन सन् 1903 में एच.एच.विन्सन ने किया। उन्होंने कबीर पर 8 ग्रन्थ लिखे। इसी प्रकार हरिऔध जी द्वारा सम्पादित कबीर वचनावली में 21 ग्रन्थ, डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा रचित हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 61 ग्रन्थ तथा नागरीप्रचारिणी सभा की रिपोर्ट में 140 ग्रन्थों की सूची मिलती है। कबीर ग्रन्थावली में कुल 809 साखियाँ, 403 पद और 7 रमैनियाँ संग्रहित हैं।

साहित्यिक क्षेत्र में पदों और साखियों का ही अधिक प्रचार हुआ परन्तु बीजक प्राय: उपेक्षित रहा। अमृतसर के गुरुद्वारे में बीजक का ही पाठ होता है। कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सार बीजक में उपलब्ध है। कबीर का प्रमुख साहित्य रमैनी, साखी और शब्द बीजक में उपलब्ध है। डॉ. पारसनाथ तिवारी ने बीजक के 32 संस्करणों की सूची दी है।

हम कह सकते हैं कि कबीर साहित्य तीन खण्डों में विभक्त है–रमैनी, साखी और शब्द। रमैनी में जगत्, साखी में जीव और शब्द में ब्रह्म सम्बन्धी विचार हैं। रमैनी शब्द का अर्थ है संसार में जीवों के रमण का विवेचन। साखी शब्द संस्कृत के साक्षी से आया है जिसका अर्थ है–गवाह। साखी में संत कबीर ने उन तथ्यों का वर्णन किया है जिसका अपने जीवन में स्वयं साक्षात्कार किया। शब्द (सबद) का प्रयोग दो अर्थों में किया है–एक तो परमतत्त्व के अर्थों में, और दूसरे पद के अर्थ में।

कबीर की साखी

:: चितावणी ::

कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखहु आइ। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीवों ! चेत जाओ। जिस वैभव में तुम लिप्त हो, वह कुछ दिनों का परचम है अर्थात् क्षणिक है। तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है। फिर इस पुर, नगर और गली को न देख सकोगे।

जिनके नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जनम सब हारि। ।

जिनके द्वार पर वैभव-सूचक नगाड़े बजते थे और मतवाले हाथी झूमते थे, उनका जीवन भी प्रभु के नाम-स्मरण के अभाव में सर्वथा व्यर्थ ही हो गया।

ढोल दमामा डुगडुगी, सहनाई औ भेरि।
औसर चले बजाइ करि, है कोइ लावै फेरि। ।

इस जीवन में वैभव प्रदर्शन हेतु बाजे जैसे ढोल, धौंसा, डुगडुगी, शहनाई और भेरी विशेष अवसरों पर बजाए जाते हैं। परन्तु जीवन इतना क्षण-भंगुर है कि जो अवसर बीत गया, उसे पुनः वापस नहीं लाया जा सकता है।

सातौ सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैठन लागे काग। ।

जिन मंदिरों और प्रासादों में सातों स्वर के बाजे बजते थे और विभिन्न प्रकार के राग गाए जाते थे, वे आज खाली पड़े हुए हैं और उन पर कौए बैठते हैं। सांसारिक वैभव की यही क्षण-भंगुरता है।

कबीर थोड़ा जीवना, माड़ै बहुत मँडान।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलतान। ।

कबीर कहते हैं कि क्षणिक जीवन के लिए मनुष्य बड़े-बड़े आयोजन करता है, किन्तु चाहे वह बहुत बड़ा राजा या सुलतान हो या साधारण, दरिद्र मनुष्य, सभी की बड़े उत्साह से निर्मित योजनाएँ ध्वस्त हो जाती है। अर्थात् राजा-रंक भी हो जाते हैं और उनकी योनजाएँ भी ध्वस्त हो जाती हैं।

इक दिन ऐसा होइगा, सब सौ परै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, सावधान किन होइ। ।

कबीर चेतावनी देते हैं कि चाहे कोई राजा, राणा या छत्रपति हो, सबके लिए एक ऐसा दिन आएगा, जब उसे संसार से सब कुछ त्यागकर

इस लोक से जाना होगा। इसलिए हे मनुष्यों ! समय रहते ही सावधान क्यों नहीं हो जाते?

कबीर पट्टन कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जम राना गढ़ भेलिसी, सुमिरि लेहु करतार। ।

कबीर कहते हैं कि जीव (सौदागर) इस शरीर रूपी नगर को एक सुरक्षित स्थान समझकर सारा सांसारिक व्यवहार अर्थात् व्यापार टिका हुआ है। किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि इस शरीर रूपी नगर में पाँच चोर (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) विद्यमान हैं और इसमें दस द्वार भी हैं। यह वैसा सुरक्षित और अभेद्य दुर्ग नहीं है, जैसा कि अज्ञानी जीवों ने समझ रखा है। इस दुर्ग पर यमराज का आक्रमण भी होगा और वह क्षणभर में इस गढ़ को ध्वस्त कर देगा। इसलिए हे जीवों ! सृष्टा का स्मरण कर लो।

कबीर कहा गरबियो, इस जोवन की आस।
केसू फूले दिवस दोइ, खंखर भये पलास। ।

कबीर कहते हैं कि यौवन पर गर्व करना व्यर्थ है। यह क्षण-भंगुर है। पलाश के फूल के समान इसकी बहार थोड़े दिनों के लिए है। जैसे यह फूल थोड़े ही दिनों में मुरझा कर गिर जाता है, वैसे ही जवानी की प्रफुल्लता भी अल्प दिनों की होती है। कुछ दिनों के पश्चात् जैसे पलाश पत्र पुष्प-विहीन होकर ठूँठ मात्र रह जाता है, वैसे ही यह शरीर भी यौवन-विहीन होकर कंकाल मात्र रह जाता है।

कबीर कहा गरबियो, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबो नहीं, ज्यों काँचली भुवंग। ।

कबीर कहते हैं कि इस सुन्दर शरीर को देखकर क्यों गर्व करते हो? मृत्यु होने पर यह शरीर जीव को वैसे ही फिर नहीं मिल सकता, जैसे सर्प केंचुल को त्याग देने पर पुनः उसे धारण नहीं कर सकता।

कबीर कहा गरबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि परौ भुई लोटना, ऊपरि जमिहै घास। ।

कबीरदास कहते हैं कि ऊँचे-ऊँचे महलों को देखकर क्यों गर्व करते हो? शीघ्र ही निधन होने पर जमीन के अन्दर लेटना होगा अर्थात् दफना दिए जाओगे और ऊपर घास जम जाएगी।

कबीर कहा गरबियो, चाँम पलेटे हाड़।
हैबर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा गाड़। ।

कबीरदास कहते हैं कि चमड़े से लपेटी हुई हड्डियों पर क्यों गर्व करते हो ? जो लोग श्रेष्ठ घोड़ों पर चढ़ते हैं और जिनके सिरों पर छत्र लगते हैं, वे भी एक दिन मिट्टी में दफना दिए जाते हैं।

कबीर कहा गरबियो, काल कर केस।
नाँ जानौं कहँ मारिहै, कै घर कै परदेस। ।

कबीरदास कहते हैं कि काल ने अपने हाथों से तुम्हारे केश को पकड़ रखा है। इसलिए तुम व्यर्थ में क्यों गर्व करते हो? घर हो या परदेश, वह तुम्हें कहाँ मार डालेगा यह तू भी नहीं जानते हो।

ऐसा यहु संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार में, झूठै रंगि न भूल। ।

यह संसार सेमर के फूल के समान है, जो ऊपर से देखने में सुन्दर और मोहक प्रतीत होता है, किन्तु उसके भीतर कोई तत्त्व नहीं होता। अल्पकाल के जीवन और उसकी विरंगात्मक भुलावे में नहीं आना चाहिए।

जीवन मरन बिचारि करि, कूरे काँम निवारि।
जिहिं पंथा तोहि चालनां, सोई पंथ सँवारि। ।

कबीरदास कहते हैं कि जीवन-मरण का विचार कर अर्थात् यह समझ ले कि जीवन थोड़े दिन का है, अन्ततः मरना है। इसलिए अक्षम्य कर्मों का परित्याग कर और जिस भक्ति मार्ग पर तुझे चलना है, उसे अभी से सुधार ले।

राखनहारे बाहिरा, चिड़ियौं खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति। ।

तेरे आध्यात्मिक जीवन-क्षेत्र का रक्षक बाहर ही बाहर है अर्थात् तुझे कोई सद्गुरु नहीं मिला और ऊपर से विषय-वासना रूपी पक्षी तेरे खेत को खाए जा रहे हैं। तू अब भी चेत जा और थोड़ा-बहुत जो बचा सके, उसे बचा ले अर्थात् अब भी आध्यात्मिक जीवन को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित कर ले।

हाड़ जरै ज्यौं लाकड़ी, केस जरैं ज्यों घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास। ।

मृत्यु के उपरान्त हड्डियाँ लकड़ी के समान जलती हैं और केश घास के समान। सारे शरीर को जलता देखकर कबीर को संसार से विराग हो गया।

कबीर देवल ढहि पड़ा, ईंट भई संवार।
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यँ ढहै न दूजी बार। ।

कबीर कहते हैं कि यह शरीर रूपी देवालय ध्वस्त हो गया और इसकी ईंटों पर घास-फूस जम गई अर्थात् शरीर का मांस और हड्डियाँ जो दफनाई गई

थीं, उन पर अब घास-फूस दिखलाई देती है। हे जीव! तू इसके निर्माता प्रभु से प्रेम कर, जिससे दूसरी बार इस देवालय के ढहने का अवसर ही न आए।

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि।
दिवस चारि पा पेखनाँ, बिनसि जाइगा कालि्ह। ।

कबीर कहते हैं कि यह शरीर लाक्षागृह के समान है, जो हीरे-लाल से जड़ा गया है अर्थात् बहुमूल्य बनाया गया है। किन्तु यह चार दिन का दिखावा है और अल्पकाल में ही विनष्ट हो जायेगा।

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेखनाँ, अंति खेह की खेह। ।

कबीर कहते हैं कि यह शरीर ऐसा है जैसे किसी ने धूल एकत्र कर कोई पिंड या पुड़िया बाँधकर रख दिया हो। यह तो अल्पकाल का दिखावा है। जिस मिट्टी से यह बना है, अन्ततः उसी मिट्टी में मिल जाता है।

कबीर जे धंधै तो धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं। ।

कबीर कहते हैं कि कर्मों से भागने से काम नहीं चलेगा। यदि कर्म को करते रहोगे तो तुम्हारा अन्तःकरण धुल जाएगा। तुम स्वच्छ हो जाओगे। बिना कर्म किये स्वच्छता नहीं आती। कर्म से कोई नष्ट नहीं होता। वही व्यक्ति मूलतः नष्ट हो जाते हैं, जो कर्म में ईश्वर का ध्यान नहीं रखते।

कबीर सुपनै रैनि कै, ऊघड़ि आए नैन।
जीव परा बहु लूट में, जागै लेन न देन। ।

कबीर कहते हैं कि जीवन अज्ञान रूपी रात्रि का स्वप्न है। उसमें जीव नाना प्रकार के सुख-दुःख, लाभ-हानि का अनुभव करता है। परन्तु वे सब अनुभव स्वप्न के समान हैं। ज्ञान-चक्षु खुल जाने पर जीव को यह विश्वास हो जाता है कि अज्ञान रूपी निद्रा में पड़े हुए लाभ-हानि का जीवन स्वप्नवत् व्यर्थ है।

कबीर सुपनैं रैनि कै, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तौ दोइ जनाँ, जे जागूँ तौ एक। ।

कबीर कहते हैं कि अज्ञान की रात्रि में जब जीव स्वप्न देखता है तो ब्रह्म और जीव में सक्था पृथक् प्रतीत होता है। वह जब तक इस अज्ञान-निद्रा में रहता है, तब तक आत्मा और परमात्मा दो अलग-अलग जान पड़ते हैं। जब वह अज्ञान-निद्रा से जगता है, तब उसे दोनों एक ही प्रतीत होते हैं।

कबीर इस संसार में, घने मनुष मतिहीन।
राम नाम जानै नहीं, आये टापा दीन। ।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में अधिकतर मनुष्य सर्वथा बद्धिमान होते हुए भी वे अपनी आँखों पर अज्ञान की पट्टी बाँधे रहते हैं। इसीलिए वे राम नाम के मर्म को नहीं जानते।

कहा कियो हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इतके भये न उत के, चाले मूल गँवाइ। ।

जीव को स्वयं पर पछतावा हो रहा है कि इस संसार में आकर हमने क्या किया, इस विषय में यहाँ से जाने के बाद प्रभु के सामने हम क्या कहेंगे ? हम न तो इस लोक के हुए, न परलोक के। हमने अपनी नैसर्गिक सरलता को भी गँवा दिया।

आया अनआया भया, जे बहु राता संसार।
पड़ा भुलावा गाफिलाँ, गये कुबुद्धी हारि। ।

जीव संसार के विषयों में इतना अनुरक्त हो जाता है कि उसका संसार में आना न आने के बराबर है अर्थात् संसार में जन्म लेकर उसे जो सीखना था, उसे वह न सीख सका। इसलिए उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। भुलावे में पड़कर वह गाफिल हो गया। सांसारिक विषयों के मायाजाल में वह अपनी नैसर्गिक आत्मीय चेतना खो बैठता है और अपनी कुबुद्धि के कारण जीवन की बाजी हार जाता है।

कबीर हरि की भगति बिन, धिग जीवन संसार।
धूँवाँ केरा धौलहर, जातन लागै बार। ।

कबीर कहते हैं कि ऐसे जीवन को धिक्कार है, जो मानव जीवन पाकर भी प्रभु की भक्ति नहीं करता। जैसे धुएँ का महल देखने में तो बहुत प्रिय लगता है, किन्तु वह सर्वथा निस्सार होता है, वैसे ही मानव-जीवन चाहे और सब बातों में कितना सुन्दर क्यों न हो, किन्तु प्रभु-भक्ति के बिना सर्वथा सारहीन हैं।

जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुन भूमि।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि। ।

जो प्रभु के भजन से जी चुराते हैं और राम के गुणों को भूल जाते हैं, उन्हें ब्रह्मा ने बगुले के रूप में बनाया है, जो कि मछली की खोज में नीचे सिर लटकाये रहते हैं।

माटी मलनि कुँभार की, घनी सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अबकी घात। ।

जिस प्रकार मिट्टी को आकार ग्रहण करने में कुम्हार द्वारा रौंदने की क्रिया में अनेक लातें सहनी पड़ती हैं, उसी प्रकार जीव को संसार में रूप ग्रहण करने में काल और कर्मों की अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। मानव-जीवन ही एक ऐसा अवसर है जब वह अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। यदि वह इस अवसर में नहीं चेतता तो अपना दाँव हमेशा के लिए चूक जाता है और मुक्ति की प्राप्ति कठिन हो जाती है।

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अंत परी मुख खेह। ।

इस मानव-जीवन रूपी सुन्दर अवसर को पाकर भी यदि तूने परमार्थ के विषय में नहीं सोचा और पशुओं के समान केवल देह को पालने में लगा रहा और राम-नाम के महत्त्व को नहीं पहचाना तो अन्त में तुझे नष्ट होकर मिट्टी में मिल जाना होगा।

राम नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि।
काया हांडी काठ की, ना ऊँ चढ़ै बहोरि। ।

मानव शरीर पाकर यदि राम-नाम के महत्त्व को नहीं समझा तो यह जीवन ही दोषपूर्ण हो जायेगा। यह शरीर काठ की हाँड़ी के समान है, जो कि आग पर सिर्फ एक बार ही चढ़ सकती है। अर्थात् एक बार प्राण निकल जाने पर पुनः जीवन का संचार नहीं हो सकता। साधना के लिए फिर शरीर न मिलेगा, इसलिए हे जीव ! इसी जीवन में शरीर रहते ही साधना में प्रवृत्त हो जा।

राम नाम जाना नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुखि धूलि। ।

हे जीव! तूने राम नाम के यश को नहीं जाना तो फिर प्रारम्भ में ही बात बिगड़ गयी। तू इस संसार में धन, यश, कामिनी, कंचन, कादम्बिनी आदि का हरण करता रहा। परन्तु इस हरण करने में तू अपने को ही खो बैठा। तेरा मानव जीवन ही व्यर्थ हो गया और अन्ततः तेरे मुख में धूल की पर्तें जमा हो गईं अर्थात् तू मिट्टी में मिल गया।

राम नाम जाना नहीं, पाल्यो कटक कुटुम्ब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब। ।

हे जीव! तूने राम नाम के महत्त्व को नहीं जाना और अपना सारा जीवन एक सेना के समान बड़े कुटुम्ब के पालने में ही व्यतीत कर दिया। सांसारिक कृत्यों में ही विनष्ट हो गया और तेरा यशोगान, तेरी कीर्ति प्रकाशित न हो सकी।

मानुष जनम दुलभ है, होइ न बारंबार।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार। ।

यह मानव जन्म अति दुर्लभ है। मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता। एक बार जब फल वृक्ष से गिर पड़ता है, तब वह फल शाखा से पुनः नहीं जुड़ सकता, वैसे ही एक बार मानव शरीर के क्षीण हो जाने पर वह पुनः नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए इस अवसर से न चूक। इस शरीर के रहते हुए प्रभु-साधना में लग जा।

कबीर हरि की भगति करि, तजि बिषिया रस चौज।
बार बार नहिं पाइए, मनिषा जन्म की मौज। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! मानव जन्म का उल्लासपूर्ण शुभ अवसर बार-बार नहीं मिलता। इसलिए इस जन्म को पाकर विषय-रस के चमत्कार और आस्वाद को छोड़कर तू प्रभु की भक्ति करता रह।

कबीर यहु तन जात है, सकै तो ठौर लगाय।
कै सेवा करि साधु की, कै गोविंद गुन गाय। ।

कबीर कहते हैं कि यह मानव शरीर नश्वर है। इसलिए हे जीव! इसके रहते हुए तू इसका सदुपयोग कर ले। तू या तो सन्तों की सेवा कर अथवा गोविन्द के गुणगान से अपने जीवन को सार्थक बना।

कबीर यहु तन जात है, सकै तो लेहु बहोरि।
नांगे हाथौं ते गए, जिनके लाख करोरि। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! यह तेरा मानव शरीर व्यर्थ में नष्ट हो रहा है। यह आकर्षक विषयों, सम्पत्ति के संग्रह आदि में विनष्ट हो रहा है। हो सके तो इसको इन क्षणिक सुखों और प्रलोभनों से बचा ले, क्योंकि सम्पत्ति-संग्रह से कोई लाभ न होगा। जिन्होंने लाखों-करोड़ों कमाया, वे भी इस संसार से खाली हाथ चले गये।

यह तन काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जिद तदि परलै जाइ। । 136। ।

यह शरीर कच्चे घड़े के समान है। जिस प्रकार कच्चे घड़े को कुम्भकार के अनेक थपेड़े सहन करने पड़ते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को जीवन में अनेक

यातनाओं को सहन करना पड़ता है। उसे किसी ओर भी शान्ति के लिए सहारा नहीं मिलता। इसलिए हे जीव! तू राम नाम में अपना ध्यान लगा, क्योंकि तेरे जीवन का कोई ठिकाना नहीं है, वह चाहे जब विनष्ट हो सकता है।

यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।
ठपका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि। ।

यह शरीर, जिसे तू बड़े गर्व के साथ लिये घूम रहा है, कच्चे घड़े के समान है, जो जरा-सा धक्का लगने से फूट जाता है और फिर कुछ भी हाथ नहीं आता। तेरा शरीर भी वैसा ही नश्वर है। इसका कोई ठिकाना नहीं।

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि। ।

हे जीव ! तू टालमटोल की प्रवृत्ति का परित्याग कर। तेरी भव-व्याधि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कबीर को राम के प्रति अनुराग हो गया है, जिससे यह उसे तंग नहीं कर पाती। हे जीव! तू भी इसी औषधि का अपने बचाव के लिए प्रयोग कर।

कबीर अपने जीव तैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोभ बड़ाई कारनैं, अछता मूल न खोइ। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! अपने मन से तुम दो बातों को निकाल फेंको-एक तो लोग, दूसरे आत्म-प्रशंसा की तृष्णा। इन दोनों दोषों के कारण अपने पास विद्यमान आत्मा रूपी पूँजी को मत खोओ।

खंभा एक गयंद दोइ, क्यों करि बंधसि बारि।
मानि करै तौ पिउ नहीं, पीव तौ मानि निवारि। ।

हे जीव! खम्भा रूपी शरीर एक ही है और अहंभाव और प्रेम रूपी हाथी दो हैं। दोनों को तुम एक साथ कैसे बाँध सकोगे? यह कैसे सम्भव है? यदि तू अहंभाव में रहता है तो उसके साथ प्रिय नहीं रह सकते। यदि तू प्रिय अर्थात् प्रभु को रखना चाहता है तो मान को निकालना पड़ेगा।

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपनैं हाथि। ।

हे जीव! तुमने सांसारिक मोह में अपना धर्म खो दिया, परन्तु वह संसार जिसके लिए तुमने अपना धर्म खो दिया, तेरे साथ न गयी। तू इतना अचेतन है कि अपने ही हाथों अपने पैर में तूने कुल्हाड़ी मार लिया है अर्थात् अपने मोह से तूने स्वयं अपना जीवन नष्ट कर लिया है।

यह तन तो सब बन भया, करम जु भए कुहारि।
आप आपकौं काटिहैं, कहैं कबीर बिचारि। ।

यह शरीर वन के समान है और कर्म कुल्हाड़ी। कबीर विचार कर कहते हैं कि हे जीव! तू अपने ही कर्म रूपी कुल्हाड़ी से अपने जीवन रूपी वन को काट रहा है अर्थात् नष्ट कर रहा है।

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि, सब कुल रहा समाइ। ।

जो केवल ससीम, कुटुम्ब, वंश आदि के मोह में पड़ा रहता है, वह वास्तविक कुल अर्थात् पूर्ण, ब्रह्म या भूमा को खो देता है। कुटुम्ब आदि ससीम के मोह में पड़े रहने से पूर्ण या सर्वस्व की प्राप्ति नहीं हो पाती है। राम निकुल हैं उसी में तू वंश आदि ससीम का समर्पण कर दे। उसी में ससीम समाया हुआ है अर्थात् वह सब में व्याप्त है।

दुनियाँ के धौखे मुवा, चलै जु कुल की कांनि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरहिं मसांनि। ।

हे जीव! तू कुल की गौरव-वृद्धि में पड़ा रहता है। इसी कारण संसारिक भुलावे में मारा जाता है। जब तुझे लोग 'मशान में लिटा देंगे, तब किसका कुल लज्जित होगा ? अर्थात् जिस कुल की मर्यादा-वृद्धि में तू पड़ा रहता है, उससे तेरा सम्बन्ध ही छूट जायेगा फिर किसके कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न रह जायेगा?

दुनियाँ भाँड़ा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष।
अदया अल्लह राम की, कुरलै कौनी कूष। ।

संसार तृष्णा से लबालब भरे हुए पात्र स्वरूप है, अतः यह दुःख का भण्डार है। इसमें पूर्ण तृप्ति के लिए प्रयास करना व्यर्थ है। अल्लाह या राम की दया के बिना यह तृष्णा समाप्त नहीं हो सकती। हे जीव! जब सारा संसार एक अतृप्त वासना का भण्डार है तो ऐसे संसार में किस खजाने के लिए चीखता रहता है?

जिहि जेवरी जग बंधिया, तू जिनि बंधै कबीर।
ह्वैसी आटा लोन ज्यौं, सोना सवां सरीर। ।

कबीर कहते हैं कि जिस माया की रज्जु से जगत् बँधा हुआ है, तू उसमें मत फँस। यदि तू उसमें फँसता है तो तेरा यह सोने के समान बहुमूल्य शरीर अर्थात् मानव जीवन का व्यक्तित्त्व वैसे ही हो जायेगा जैसे आटा में नमक मिलाने पर वह इस प्रकार घुल-मिल जाता है कि उससे पृथक् नहीं किया जा सकता।

कहत सुनत जग जात है, विषय न सूझै काल।
कबीर प्यालै प्रेम के, भरि भरि पिबै रसाल। ।

उपदेशों को कहते और सुनते हुए संसार के लोगों का जीवन समाप्त होता जाता है। विषय में पड़े हुए उन्हें काल की सुधि नहीं रहती। किन्तु कबीर जैसे सन्त विषय के प्याले को मुख से नहीं लगाते। वे मधुर, प्रेम से परिपूर्ण प्याले को छक-छककर पीते हैं।

कबीर हद के जीव सौं, हित करि मुखाँ न बोलि।
जे राचे बेहद सौं, तिन सौं अंतर खोलि। ।

कबीर कहते हैं कि ससीम में फँसे हुए लोगों की संगत में मत पड़ों। उनसे अधिक प्रेम की वाणी न बोलो, अन्यथा तुम भी उनकी बातों में फँस जाओगे। जो साधक असीम में अनुरक्त हैं, उन्हीं से तुम अपने हृदय की बात कहो। उन्हीं की संगत करो और उन्हीं की बातों पर चलो।

कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनो सहै सिरि चोट। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू केवल प्रभु का स्मरण कर, केवल उसी को अपना अवलम्ब बना। वही तुझको सब दु:खों से मुक्त कर सकता है, अन्यथा जैसे निहाई पर रखा हुआ लोहा हथौड़े की चोट से पीटा जाता है, वैसे ही तुझे सिर पर सांसारिक दु:खों की चोट सहनी पड़ेगी।

कबीर केवल राम कह, सुद्र गरीबी झालि।
कूर बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालि। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू अपनी गरीबी को झेलते हुए केवल प्रभु का स्मरण कर। व्यर्थ का बड़प्पन नष्ट हो जायेगा और भविष्य में यह तुझे बहुत मँहगा पड़ेगा। तू उसके बोझ से दब जायेगा।

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ।
ऊजर भए न छूटिए, सुख नींदरी न सोइ। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तूने स्वच्छता के वास्तविक मर्म को नहीं समझा है। तू शरीर और कपड़ों को धोकर स्वच्छता का व्यर्थ आडम्बर करता है। वास्तविक स्वच्छता मन की है। काया और वस्त्र के स्वच्छ होने से नहीं वरन् केवल मन की स्वच्छता से ही मुक्त होगा। इसलिए बाह्य स्वच्छता को वास्तविक स्वच्छता समझकर निश्चिन्त मत रह। सर्वदा आन्तरिक परिष्कार का प्रयास करता रह।

ऊजल कपड़ा पहिरि करि, पान सुपारी खाँहि।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि। ।

कबीर कहते हैं कि लोग प्राय: श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और अपने मुख को सुशोभित करने के लिए पान-सुपारी का सेवन करते हैं। किन्तु प्रभु के भजन के बिना इस बाह्य सजावट से काम नहीं चलेगा। केवल हरि-स्मरण से ही मुक्ति होगी।

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।
मन परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ। ।

हे जीव! तेरा कोई परम मित्र नहीं है, सब लोग अपने-अपने स्वार्थ में बँधे हुए हैं। परन्तु तू ऐसा अज्ञानी है कि इस कटू सत्य के प्रति तेरे मन में प्रतीति नहीं होती और न तेरे हृदय में विश्वास जमता है। कोई भी तेरे साथ न जाएगा।

माँइ बिड़ाँणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह।
दरिया केरी नाँव ज्यों, सँजोगे मिलि जाँहि। ।

जगत् में सारे सम्बन्ध क्षणिक और संयोगजनक हैं। माँ भी पराई है, पित भी पराया है और हम सब भी पराए लोगों के बीच में हैं। इनमें से कोई अपना निजी व्यक्ति नहीं है। संसार में हम लोग उसी प्रकार संयोगवश मिल जाते हैं जैसे भिन्न-भिन्न स्थानों से आई हुई नौकाएँ समुद्र या नदी में अकस्मात् मिल जाती है।

इत पर घर उत घर, बनिजन आए हाट।
करम किरानाँ बेंचि करि, उठि कर चाले बाट । ।

यह संसार जीव का नैसर्गिक धाम नहीं है। वास्तविक धाम तो केशवधाम है, जहाँ से हम आए हैं। संसार एक बाजार के समान है, जहाँ पर लोग वाणिज्य के लिए आते हैं और अपना कर्म रूपी सौदा बेंचकर अपने-अपने मार्ग पर चले जाते हैं। इसलिए हे जीव! संसार तेरा वास्तविक धाम नहीं है वरन् प्रभु ही तेरा वास्तविक शाश्वत धाम है।

नाँन्हाँ काती चित्त दे, मँहगे मोलि बिकाइ।
गाहक राजा राम हैं, और न नेड़ा आइ। ।

हे जीव! तू मन लगाकर बारीक कताई कर, क्योंकि बारीक सूत मँहगें दामों पर बिकता है अर्थात् तू अच्छे कर्म कर। उसका ही बड़ा मूल्य होगा और उसके ग्राहक कोई सांसारिक राजा नहीं, स्वयं प्रभु होंगे। कोई दूसरा तेरे निकट नहीं आएगा। इस माल को कोई दूसरा न खरीद सकेगा।

डागल ऊपरि दौरनां, सुख नींदड़ी न सोइ।
पुन्नैं पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ। ।

हे जीव! यह मानव जीवन पुष्पों की शय्या नहीं अपितु ऊबड़-खाबड़ कंटकाकीर्ण मार्ग पर दौड़ने के समान है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना करनी पड़ेगी। क्षुद्र सांसारिक सुखों में लिप्त होकर सुख की नींद न सो। अपने शुभ कर्मों और पुण्य के प्रताप से तुझे देवालय के समान यह पवित्र मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसे तुच्छ कार्यों में लगाकर तू नष्ट न कर।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भागि।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि। ।

अहं बुद्धि, आपा बहुत बड़ा रोग है। इसलिए तू उससे मुक्त होने का प्रयत्न कर। क्योंकि 'मैं मैं' से लिप्त बुद्धि आग से लिपटी हुई रूई के समान है, जो तेरे सारे जीवन को नष्ट कर देगी।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैखड़ा, मेरी गल की पास। ।

हे जीव! अहंभाव और ममत्व पैरों की बेड़ी और गले की फाँसी के समान है, अत: अहंभाव और मेरेपन से दूर रह। अन्यथा यह तेरे जीवन के मूल को ही नष्ट कर डालेगा।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवनहार।
हल्के हल्के तिरि गए, बूड़े जिन सिर भार। ।

कबीर कहते हैं कि भव-सागर से पार जाने के लिए यह प्राण, मनयुक्त मानव तन एक नाव के समान है। यह ऐसी नाव है, जो कि एक तो जर्जर हो चुकी है अर्थात् इसमें मोह, मद, राग, द्वेष आदि के छिद्र हो गए हैं, दूसरे इसका नाविक वासना और अहंभावयुक्त अज्ञानी मन है, जो कि सर्वथा निकम्मा है। ऐसी नाव से जीवन-यात्रा कैसे पूरी हो सकती है। जिन लोगों ने भक्ति और साधना से अपनी वासना और अहंभाव को त्याग कर अपने को हल्का कर लिया है, वे ही इस भव-सागर को पार कर सकते हैं।

:: मधि ::

कबीर मधि अंग जे को रहै, तो तिरत न लागै बार।
दुइ-दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार। ।

कबीर कहते हैं कि जो मध्य मार्ग का अनुसरण करता है, उसे संसार रूपी भवसागर पार करते देर नहीं लगती। जो द्वन्द्व अर्थात् सुख-दु:ख, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि में लिप्त रहता है, वही संसार में डूबता है।

कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपपि है, दोऊ कहिए आगि। ।

कबीर कहते हैं कि संशय को छोड़कर, अतिवादी दृष्टियों को त्यागकर मध्यम वर्ग में लग जाना चाहिए। अत्यधिक शीतलता और अत्यधिक ताप दोनों अग्नि के समान विनाशक होते हैं। इसलिए मध्यम मार्ग ही श्रेष्ठ है।

अनल आकासाँ घर किया, मद्धि निरन्तर बास।
वसुधा व्योम बिरकत रहै, बिना ठौर बिस्वास। ।

एक पक्षी अन्तरिक्ष में अपना नीड़ बनाता है और आकाश तथा पृथ्वी भू-लोक और स्वर्गलोक के बीच में ही निरन्तर वास करता है। यद्यपि अन्तरिक्ष में कोई प्रत्यक्ष आश्रय नहीं है, तथापि अपने दृढ़ विश्वास से वह वहाँ स्थित रहता है। ठीक इसी प्रकार साधक को द्वन्द्वों से अलग रहकर 'सहज-समरस' अवस्था में स्थित रहना चाहिए।

बासुरि गमि नारैनि गमि, नाँ सुपिनंतर गंम।
कबीर तहाँ विलंबिया, जहाँ छाँह नहिं धंम। ।

कबीर कहते हैं कि मैं उस द्वन्द्वातीत अवस्था में स्थित हूँ जहाँ न दिन की पहुँच है, न रात की, जो स्वप्नों में भी नहीं जाना जा सकता और न जहाँ छाया है, न धूप।

जिहि पैंडै पंडित गए, दुनियाँ परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रहा कबीर। ।

जिस मार्ग से शास्त्र ज्ञानी, पंडित और संसार की भीड़ चलती रहती है, कबीर उस मार्ग पर नहीं चले। परमतत्त्व का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। वह दुर्गम, कठिन और सँकरा मार्ग गुरु ने बतलाया और कबीर ने उसी मार्ग का अनुसरण कर परमतत्त्व तक आरोहण किया।

सुरग नरक मैं रहा, सतगुर के परसादि।
चरन कँवल की मौंज मैं, रहौं अंति अरु आदि। ।

सत्गुरु की कृपा से मैं स्वर्ग-नरक दोनों से विरत हूँ। ये दोनों भोग के स्थल हैं। इनमें जन्म-मरण का चक्कर लगा रहता है। मैं तो निरन्तर प्रभु के चरण-कमल के आनन्द में मग्न रहता हूँ।

हिन्दू मूये राँम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ। ।

हिन्दू लोग परमतत्त्व के लिए 'राम-राम' रटते हुए और मुसलमान 'खुदा' में सीमित करके विनष्ट हो गये। कबीर कहते हैं कि वास्तव में वही जीवित हैं, जो राम और खुदा में भेद नहीं करता और दोनों में व्याप्त अद्वैत-तत्त्व को ही देखता है। जीवन की सार्थकता इस भेद-बुद्धि से ऊपर उठना है।

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा अनंदी राँम के, जिनि सुख-दुख मेल्हे दूरि। ।

दु:खी व्यक्ति दु:ख के कारण पीड़ित रहता है और सुखी अधिक सुख की खोज में चिन्तित रहता है। कबीर कहते हैं कि राम के भक्त, जिन्होंने दु:ख-सुख के द्वन्द्व का त्याग दिया है, सदा आनन्द में रहते हैं।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राँम सनेही यूँ मिलै, दोनउं बरन गँवाइ। ।

कबीर कहते हैं कि हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत रंग का होता है। परन्तु जब दोनों एक में मिलते हैं, तब एक नया लाल रंग बन जाता है। इसी प्रकार जब राम और उनके भक्त मिलते हैं, तब न तो भक्त का अहंभाव रह जाता है और न ब्रह्म का निर्गुणत्व। वह भागवत पुरुष हो जाता है।

काबा फिर कासी भया, राँमहि भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम। ।

सम्प्रदाय के आग्रहों को छोड़कर मध्यम मार्ग को अपनाने पर काबा काशी हो जाता है और राम, रहीम बन जाते हैं। सम्प्रदायों की रूढ़ियाँ समाप्त हो जाती हैं। भेदों का मोटा आटा अभेद का मैदा बन जाता है। हे कबीर! तू इस अभेद रूपी मैदे का भोजन कर, स्थूल भेदों के द्वन्द्व में न पड़।

धरती उरु असमान बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़ा, अरु चौरासी सिध। ।

पृथ्वी और आकाश के बीच में द्वैत-दृष्टि का तुंबा अविनाश्य है। उसका सरलता से विनाश नहीं किया जा सकता। उसी द्वैत के कारण छहों दर्शन और चौरासी सिद्ध संशय में पड़े रहते हैं तथा सत्य का अनुशरण नहीं कर पाते।

:: बेसास ::

जिनि नर हरि जठराहँ, उदिक थैं पिडं प्रकट कीयौं।
सिरे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ। ।
उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रखियौ।
अंन पान जहाँ जरै, तहाँ तैं अनल न चखियौ। ।

इहि भाँति भयानक उद्र में उद्र न कबहूँ छंछरै।
कृसन कृपाल कबीर कहि, हम प्रतिपाल न क्यों करै। ।

जिस प्रभु ने गर्भ में रज-वीर्य से मानव शरीर का निर्माण किया, जिसने उसको कान, हाथ, पैर, जिह्वा, मुख आदि दिया, गर्भ में ऊपर पैर और नीचे सिर की दशा में दस मास तक सुरक्षित रखा। जिस जठराग्नि में भुक्त अन्न, जल आदि जीर्ण हो जाते हैं, वहाँ भी तू उस जठराग्नि से बचा रहा। इस प्रकार माँ के भयानक पेट में भी तेरा उदर कभी खाली नहीं रहा, तेरा पोषण मिलता रहा। जब उदर में इस परिस्थिति में उदार प्रभु तेरा पोषण करता रहा, कबीर कहते हैं तो वह कृपालु प्रभु अब तेरा प्रतिपालन क्यों न करेगा? अर्थात् हे मनुष्य! तू प्रभु की उदारता पर विश्वास रख। वह तेरी रक्षा करेगा।

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भाँड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पुरवन लोग। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू 'भूखा-भूखा' की रट क्यों लगाता है? अपनी भूख की कहानी लोगों को क्यों सुनाता है ? जिस कृपालु प्रभु ने तेरे शरीर रूपी घड़े को गढ़कर मुख दिया है, वही उदर-पूर्ति भी करेगा।

रचनाहार कौं चीन्हि लै, खाबे कौं क्या रोइ।
दिल मन्दिर मैं पैसि करि, तांनि पछेवरा सोइ। ।

हे जीव! तू अपने स्रष्टा को पहचान। खाने के लिए क्यों रोता है? अपने हृदय रूपी मन्दिर में प्रविष्ट होकर तू प्रत्यग्राम्य को पहचान और विश्वास रूपी चादर ओढ़कर सुख की नींद सो अर्थात् निश्चिन्त हो जा।

राँम नाँम करि बोंहड़ा, बोहौ बीज अघाइ।
खंड ब्रह्माण्ड सूखा परै, तऊ न निष्फल जाइ। ।

रामनाम का बीज धारण करो और जी-भरकर अपने जीवन-क्षेत्र में बोओ। चाहे चारों ओर सूखा पड़ जाये, कहीं भी वर्षा न हो अर्थात् चाहे जैसी विकट परिस्थिति क्यों न हो, यह रामनाम का बीज अवश्य उगेगा। वह कभी निष्फल नहीं जा सकता है। रामनाम से संसिद्धि अवश्य प्राप्त होगी।

चिंतामनि चित मैं बसै, सोई चित मैं आंनि।
बिन चिंता चिंता करै, इहै प्रभु की बांनि। ।

तेरे अंतर्मन में सभी वांछित पदार्थों को देनेवाला समर्थ ईश्वर रूपी चितामणि विद्यमान है। तू उसी में चित्त को लगा। प्रभु का यही स्वभाव है कि वह सबका ध्यान रखते हैं, कोई उनका चिंतन करे या न करे।

कबीर का तूँ चिंतवै, का तेरे चिंते होइ।
अनचिन्ता हरि जी करै, जो तोहि चिंति न होइ। ।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू व्यर्थ की चिंता क्यों करता है? तेरे चिंता करने से होता भी क्या है? तेरे लिए जो आवश्यक है प्रभु बिना तेरे सोचे पूर्ण कर देते हैं, जिससे तुझे चिंता न करनी पड़े। इसलिए प्रभु में पूर्ण आस्था रख।

करम करीमाँ लिखि रहा अब कुछ लिखा न जाइ।
मासा घटै न लि बढ़ै, जौ कोटिक करै उपाय। ।

कृपालु प्रभु ने तेरे कर्मों के अनुसार फल का लेखा-जोखा तैयार कर रखा है। अब उसके आगे कुछ भी नहीं लिखा जा सकता। इसमें कुछ भी घट-बढ़ नहीं हो सकती, व्यक्ति चाहे जितना कोशिश क्यों न करे।

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोई। ।

प्रभु ने जीव के लिए जितना भोग रच दिया है उतनी ही उसे मिलता है। इसके अतिरिक्त उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, कोई चाहे कितना ही सिर क्यों न पिट ले।

चिंता छांड़ि अचिंत रहु, साँई है समरत्थ।
पसु पंखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठी किसा गरत्थ। ।

हे जीव ! तू चिंता छोड़कर निर्शचित रह। प्रभु सामर्थ्यवान है। पशु, पक्षी और अन्य जीव-जन्तुओं को भी उनकी आवश्यकता के अनुसार प्रभु ने सम्पदा एकत्र कर रखी है। जिसने उनके लिए सभी आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की है, वही तेरे लिए करेगा।

इसंत न बाँधे गाठरी, पेट समाता होइ।
आगैं पाछैं हरि खड़ा, जो माँगै सो देइ। ।

संत में संचय की प्रवृत्ति नहीं होती। वह केवल आवश्यकता-भर पदार्थों को ग्रहण करता है अर्थात् उसमें अपरिग्रह की अपवृत्ति नहीं होती है। प्रभु सर्वव्यापी है। भक्त को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह उसकी पूर्ति कर देता है।

राँम नाँम सौं दिल मिला, जम सों परा दुराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ। ।

मेरा हृदय रामनाम से युक्त है। अब यमराज मेरा कुछ नहीं कर सकता। उसके अधिकार से मैं अलग हो गया हूँ। मुझे अपने इष्टदेव का पूरा भरोसा है। उनका भक्त कभी नरक में नहीं जा सकता।

कबीर तूँ काहै डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहिं डोलिए, कूकुर भुसैं जु लाख। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! प्रभु का संरक्षण हाथ तेरे ऊपर है, फिर तू क्यों विचलित होता है? जब तू हाथी पर सवार हो गया, तब क्यों भयभीत होता है? अब तो तू सुरक्षित है। तेरे पीछे चाहे लाख कुत्ते भूँकें, तुझे उनका भय नहीं करना चाहिए।

मीठा खाँड़ मधूकरी, भाँति भाँति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बिना बिलायत राज। ।

भिक्षा से प्राप्त भोजन में भाँति-भाँति का अन्न रहता है। वह खाँड़ के समान मीठा होता है। उसमें किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं रहता। भिक्षान्न से सन्तुष्ट ऐसा साधु बिना राज्य के ही राजा है।

माँनि महातम प्रेम रस, गरवातन गुण नेह।
ए सबही अहला गया, जबहिं कहा कछु देह। ।

किसी व्यक्ति से किसी वस्तु की याचना करते ही सम्मान, महात्म्य, प्रेमभाव, गौरव, गुण और स्नेह आदि सभी का नाश हो जाता हैं।

माँगन मरन समान है, बिरला बंचौ कोइ।
कहै कबीरा राम सौं, मति रे मँगावै मोहि। ।

माँगना मृत्यु के समान दु:खदायी है। ऐसी वृत्ति से शायद ही कोई बच पाता है। प्रत्येक को कुछ-न-कुछ आवश्यकता पड़ती रहती है और उसे माँगना पड़ता है तथापि कबीर राम से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैं ऐसी स्थिति में कभी न आऊँ कि मुझे कभी किसी से कुछ माँगना पड़े।

पांडर पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
राँम नाँम सींचा अँमी, फल लागा विस्वास। ।

शरीर कुंद की झाड़ समान है, उसके पुष्प में मनोरथ की अनुपम संगुध है। उस पर मनरूपी भ्रमर मँडराता रहता है। उस झाड़ को साधक रामनाम जपरूपी अमर प्राणदायियी शक्ति से सींचता रहता है। तब उसमें विश्वास के फल प्रफुल्लित होते हैं। यही भक्ति की सार्थकता है।

मेरि मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास।
अब मेरे जूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी आस। ।

अहं और मेरापन का भाव समाप्त हो गया। अब मैं इस सीमा से विरत् हो गया और मेरी ब्रह्म में पूर्ण आस्था हो गयी। हे प्रभु अब मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है, केवल तुम्हारा भरोसा है।

जाके हिरदै हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।
एकै लहरि समुंद की, दुख दालिद सब जाइ। ।

जिसके हृदय में प्रभु का निवास है, वह और किसके लिए कल्पित है ? भगवान के अनुग्रहरूपी समुद्र की एक लहर मात्र से उसके सभी दु:ख और दारिद्र्य नष्ट हो जाते हैं।

पद गावै लौंलीन ह्वै, कटी न संसै पास।
सबै पछाड़े थोथरे, एक दिना बिस्वास। ।

यदि संशय का बंधन नहीं कटा तो सर्वथा प्रभु में लीन होकर पद गाने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। विश्वास-रहित सारी साधना वैसे ही व्यर्थ है जैसे बिना अन्नकण के थोथे तुष (खाली सूप) को पछोरना।

गावन ही मैं रोवना, रोवन ही मैं राग।
इक बैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग। ।

एक दिखावे में गाता है, किन्तु भीतर से रोता है। दूसरा ऊपर से तो रोता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु भीतर से गाता है। ठीक इसी प्रकार एक वैरागी होते हुए भी भीतर से आसक्त रहने के कारण गृहस्थी से बँधा है और दूसरा ऊपर से घर-गृहस्थी तो बनाये हुए है, किन्तु भीतर से वह अनासक्त है अर्थात् उसमें सांसारिक विषयों के प्रति वास्तविक वैराग्य है।

गाया तिन पाया नहीं, अनगायाँ तै दूरि।
जिनि गाया विस्वास सौं, तिन राम रहा भरपूरि। ।

जिन्होंने बिना विश्वास के प्रभु का गुणगान किया, भक्ति का ढिंढोरा पीटा, वे प्रभु को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, जो प्रभु का नाम लेते ही नहीं, उनसे तो वह दूर ही है। जो श्रद्धा और विश्वास के साथ राम-नाम का गुणगान करते हैं, उनके रोम-रोम में प्रभु व्याप्त रहते हैं।

:: सम्रथाई ::

ना कछु किया न करि सका, नाँ करने जोग सरीर।
जो कछु किया सो हरि किया (ताथै) भया कबीरकबीर। ।

मैंने स्वयं से कुछ भी नहीं किया और न कर सकने की सामर्थ्य है। यह स्थूल शरीर किसी कार्य के योग्य नहीं है। मेरे जीवन में जो कुछ भी संभव हुआ है, वह सब प्रभु ने किया है। उन्हीं की साधना से एक साधारण व्यक्ति श्रेष्ठ कबीर हो गया।

कबीर किया कछु होत नहिं, अनकीया सब होइ।
जौ कीएं ही होत है, तौ करता औरै कोइ। ।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य ईश्वर के अनुग्रह के बिना कुछ नहीं प्राप्त कर सकता। यदि भगवदनुग्रह प्राप्त हो जाता है तो बिना साधना किये ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यदि साधना, तपस्या आदि से कुछ होता भी है तो उसका वास्तविक कर्ता कोई और नहीं प्रभु ही है।

जिसहि न कोइ तिसहि तूँ तिस सब कोइ।
दरगह तेरी साँइयाँ, नाँमहरूँम न होइ। ।

जसका कोई नहीं है, उसका भी आश्रय तू ही है। जिसे तेरा आश्रय प्राप्त है, उसको सभी के आश्रय स्वत: प्राप्त हो जाते हैं। हे प्रभु ! तेरे दरबार में कोई वंचित नहीं रहता अर्थात् तेरी कृपा सब को प्राप्त होती है।

एक खड़े ही ना लहैं, और खड़े बिललाइ।
साँई मेर, सुलषनां, सूतां देह जगाइ। ।

कुछ दरबार ऐसे होते हैं जहाँ कुछ लोग खड़े रहते हुए भी कुछ पाने से वंचित रहते हैं और वहीं खड़े-खड़े बिलखते रहते हैं। परन्तु मेरा प्रभु ऐसा कृपालु है कि वह सोये हुए को भी जगाकर देता है।

सात समुंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरनी सब कागद करौं, (तऊ) हरि गुन लिखा न जाइ। ।

यदि सातों समुद्रों की स्याही बना डालूँ, सारे बनराजि की लेखनी और सारी पृथ्वी को कागज के रूप में ग्रहण करूँ तो भी प्रभु के गुणों का वर्णन सम्भव नहीं।

अबरन कौं क्या बरनिये, मोपै बरनि न जाइ।
अबरन बरने बाहिरा, करि करि थका उपाइ। ।

जो अवर्णनीय है उसका वर्णन कैसे हो सकता है? मेरे लिए उसका वर्णन सम्भव नहीं है। वह वर्णन से परे है। लोग अनेक कोशिश करके थक गए किन्तु उसका वर्णन करने में असफल ही रहे।

झल बाँवे झल दाँहिनैं, झलहि मांहि व्यौंहार।
आगै पीछै झलमई, राखै सिरजनहार। ।

संसार में जीव दाहिने-बाएँ, आगे-पीछे चारों ओर ज्वाला अर्थात् त्रिताप (आधिभौतिक-आध्यात्मिक और आधिदैविक) से घिरा हुआ है और उसका

सारा व्यवहार इसी ज्वाला के भीतर ही सम्पन्न होते हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रभु ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। उसमें स्वयं बचने की सामर्थ्य नहीं है।

साँई मेरा बानियाँ, सहजि करै व्यौपार।
बिन डाँड़ी बिन पालरै, तौले सब संसार। ।

मेरा प्रभु अद्‌भुत व्यापारी है। वह सहज रूप में व्यापार करता है अर्थात् संसार के प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार फल देता है। उसके न्याय का तराजू ऐसा है जिसमें डाँड़ी और पलड़े के बिना व्यक्ति के भाग का निर्धारण उसके कर्म के अनुसार करता है।

कबीर वार्या नाँव पर, कीया राई लौनं।
जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावै कौंन।।

कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु के नाम पर अपने को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया है। जिसे भगवान सन्मार्ग पर लगा देता है, उसे भ्रमित कौन कर सकता है?

कबीर करनी क्या करै, जे राँम न करै सहाइ।
जिहि जिहि डाली पग धरै, सोई नइ नइ जाइ।।

कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य को भगवान की सहायता न मिले तो वह अपने उपाय से क्या कर सकता है? प्रभु की सहायता के बिना साधक जिस डाल का आश्रय लेकर ऊपर चढ़ना चाहता है अर्थात् साधना में जिस मार्ग का अवलम्ब लेकर आगे बढ़ना चाहता है, वही डाल नीचे झुक जाती है और साधक के नीचे गिर जाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है।

जदि का माइ जनमियाँ, काहू न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुःख।।

मुझे जब से माता ने जन्म दिया, मैंने कहीं सुख नहीं पाया। यदि मैं डाल-डाल पर रहता हूँ तो दुःख आगे पात-पात पर रहता है अर्थात् मैं जितना ही दुःख से बचने का उपाय करता हूँ, उतना ही दुःख प्रत्यक्ष दिखायी देती है। केवल प्रभु की शरण में ही सुख है।

साँई सौं सब होत है, बंदे ते कछु नाँहि।
राई ते परबत करै, परबत राई माँहि।।

जीवन में जो भी कार्य हैं वह प्रभु की कृपा से ही पूर्ण होता है, सेवक के प्रयत्न से नहीं हो सकता। प्रभु ऐसी शक्ति है कि वह राई को पर्वत और पर्वत को राई में बदल सकता है अर्थात् क्षुद्र को महान् और महान् को क्षुद्र बना सकता है।

:: कुसबद ::

अनी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरु में दास॥

भाले की नोंक की चोट ता सहा जा सकता है। भाला लगने पर मनुष्य एक बार व्यथा की श्वास तो निकाल भी सकता है, किन्तु दुर्वचन की चोट असह्य होती है। उसे सहन करने की क्षमता जिसमें होती है, कबीर उसे अपना गुरु मानने को तैयार हैं। अर्थात् कटु वचन सहने वाले व्यक्ति संसार में विरले ही मिलते हैं।

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराइ।
कुटिल बचन साधू सहै, दूजै सहा न जाइ॥

सहन करने की क्षमता केवल महान् लोगों में होती है। विशाल धरती में ही यह क्षमता होती है कि वह खोदाई के कष्ट को झेले, सुविस्तृत वनराजि में ही यह क्षमता है कि वह काट-कूट को सहन कर सके। इसी प्रकार विशाल हृदयमयी प्रभु-भक्त में ही यह क्षमता व्याप्त होती है कि वह लोगों के दुर्वचन वचन सहता है। अन्य लोगों में यह सहन शक्ति नहीं होती।

सीतलता तब जानिए, समता रहै समाइ।
पख छाड़ै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ॥

मनुष्य में वास्तविक शीतलता का गुण तब समझना चाहिए, जब उसमें समत्व का भाव आ जाये, मान-अपमान की भावना से विवर्जित हो जाये और जब वह पक्ष छोड़कर सर्वथा निष्पक्ष हो जाये। तब दुर्वचन उसे दु:खित नहीं कर सकते।

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जलै, सो मेरे उदक समान॥

जब मेरे भीतर ब्रह्म-ज्ञान जगा तो समत्वजनित शीतलता व्याप्त हो गयी। जिस दुर्वचन-रूपी अग्नि से सारा संसार जल रहा है, वह मेरे लिए जल के समान शीतल हो गया।

:: सबद ::

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति।
बाहर भीतर रमि रहा, तातैं छूटि भरांति। ।

कबीर कहते हैं कि मेरे भीतर अनाहत नाद बिना तारों के वाद्य यन्त्र की ध्वनि के समान गूँज रहा है। वह भीतर-बाहर चारों ओर रम रहा है। फलस्वरूप

मेरा चित्त शब्द-ब्रह्म में लीन हो गया है और इससे मेरी सारी भ्रान्तियाँ जाती रही हैं।

सती संतोषी सावधान, सबदभेद सुबिचार।
सतगुर के परसाद तैं, सहज शील मत सार॥

जो साधक सत्यनिष्ठ है, सहनशील है और अवधानपूर्वक सभी ध्वनियों के रहस्य पर भली-भाँति विचार करता है, वह सत्गुरु के कृपा से उस सहज अवस्था को प्राप्त करता है, जो सब मतों का सार है।

सतगुर ऐसा चाहिए, जस सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह दर्पन, करै सोइ॥

सत्गुरु को सिकलीगर अर्थात् सान धराने वाले के समान होना चाहिए, जो शब्द के मसकले द्वारा शिष्य को दर्पण के सदृश निर्मल कर देता है। अर्थात् गुरु ऐसा हो जो सुरति-शब्द-योग की साधना द्वारा शिष्य के सब दूषित संस्कारों को अपसारित कर उसका अन्तःकरण बिल्कुल निर्मल कर दे।

हरि रस जे जन बेधिया, सर गुण सींगणि नाँहि।
लागी चोट सरीर मैं, करक कलेजे माँहि। ।

सत्गुरु अपने शब्द को बड़े ही आश्चर्य ढंग से संचालित करता है। वह न तो शर अर्थात् बाण का प्रयोग करता है और गुण अर्थात् प्रत्यंचा तथा सींगणि अर्थात् धनुष का। फिर भी उसके द्वारा प्रवाहित भक्ति-रस से जो बिद्ध होते हैं, उन पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उस शब्द की चोट तो लगती है शरीर में, किन्तु उसकी टीस हृदय तक प्रवेश कर जाती है।

ज्यों ज्यों हरि गुन साँभलूँ, त्यों त्यों लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ी, भलका रहा सरीर। ।

मैं ज्यों-ज्यों प्रभु के गुणों का स्मरण करता हूँ, त्यों-त्यों वियोग का बाण मेरे अन्तस्तम में प्रविष्ट होता जाता है और वह बाण ऐसे भयंकर रूप में लगता है कि उसका सरकंडा तो टूटकर अलग हो जाता है, किन्तु उसका फलक भीतर ही बिंधा रह जाता है। इसलिए उसको निकालना असंभव हो जाता है।

ज्यौं ज्यौं हरि गुण साँभलौं, त्यौं त्यौं लागै तीर।
लागे ते भागै नहीं, साहनहार कबीर। ।

मैं जितना ही प्रभु के गुण का स्मरण करता हूँ, उतना ही मिलन की उत्कण्ठा तीव्र होती जाती है और विरह की वेदना तीर के समान चोट करती है। किन्तु कबीर उस वेदना से भागनेवाला नहीं है। वह धैर्य से उसको सहन करता है।

सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।
लागी चोट जु सबद की, रहा कबीरा ठौर। ।

प्राय: सारे लोग जोर-जोर से पुकारते हैं, किन्तु उनकी पुकार बनावटी होती है। वास्तविक वेदना की पुकार कुछ और ही होती है। गुरु के शब्द की चोट लगने पर कबीर जहाँ-का-तहाँ रह गया। उसमें पुकारने की भी शक्ति शेष न रह गयी।

:: गुरुदेव ::

सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सई न दाति।
हरिजी सवाँ न को हितू, हरिजन सई न जाति। ।

सद्गुरु के समान कोई सगा नहीं है। शुद्धि के समान कोई दान नहीं है। इस शुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं हो सकता। हरि के समान कोई हितकारी नहीं है, हरि सेवक के समान कोई जाति नहीं है।

बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।
मानुष तैं देवता किया, करत न लागी बार। ।

मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैंकड़ों बार न्यौछावर जाता हूँ जिसने मुझको बिना विलम्ब के मनुष्य से देवता कर दिया।

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार। ।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है। उसका उपकार भी अनन्त है। उसने मेरी अनन्त दृष्टि खोल दी जिससे मुझे उस अनन्त प्रभु का दर्शन प्राप्त हो गया।

राम नाम कै पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि। ।

गुरु ने मुझे राम नाम का ऐसा दान दिया है कि मैं उसकी तुलना में कोई भी दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ।

सतगुरु कै सदकै करूँ, दिल अपनीं का साँच।
कलिजुग हम सौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बाँच। ।

सद्गुरु के प्रति सच्चा समर्पण करने के बाद कलियुग के विकार मुझे विचलित न कर सके और मैंने कलियुग पर विजय प्राप्त कर ली।

सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे तीर।
एक जु बाहा प्रीति सों, भीतर बिंधा शरीर। ।

मेरे शरीर के अन्दर (अन्तरात्मा में) सद्गुरु के प्रेमपूर्ण वचन बाण की भाँति प्रवेश कर चुके हैं जिससे मुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया है।

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक। ।

सद्गुरु सच्चे वीर हैं। उन्होंने अपने शब्दबाण द्वारा मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है।

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि। ।

मैं अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता हुआ लोक और वेदों में सत्य खोज रहा था। मुझे भटकते देखकर मेरे सद्गुरु ने मेरे हाथ में ज्ञानरूपी दीपक दे दिया जिससे मैं सहज ही सत्य को देखने में समर्थ हो गया।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आँवौं हट्ट। ।

कबीर दास जी कहते हैं कि अब मुझे पुनः इस जन्म-मरणरूपी संसार के बाजार में आने की आवश्यक्ता नहीं है क्योंकि मुझे सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

ग्यान प्रकासा गुरु मिला, सों जिनि बीसरिं जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आई। ।

गुरु द्वारा प्रदत्त सच्चे ज्ञान को मैं भूल न जाऊँ ऐसा प्रयास मुझे करना है क्योंकि ईश्वर की कृपा से ही सच्चे गुरु मिलते हैं।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लौंन।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंन। ।

कबीर कहते हैं कि मैं और मेरे गुरु आटे और नमक की तरह मिलकर एक हो गये हैं। अब मेरे लिये जाति-पाति और नाम का कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा निरंध।
अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों कूप पडंत। ।

अज्ञानी गुरु का शिष्य भी अज्ञानी ही होगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही नष्ट होंगे।

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्याडाव।
दोनौं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव। ।

साधना की सफलता के लिए ज्ञानी गुरु तथा निष्ठावान साधक का संयोग आवश्यक है। ऐसा संयोग न होने पर दोनों की ही दुर्गति होती है। जैसे कोई पत्थर की नाव पर चढ़ कर नदी पार करना चाहे।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहि घर किसकौ चाँन्दना, जिहि घर गोविंद नाँहि। ।

ईश्वर भक्ति के बिना केवल कलाओं और विद्याओं की निपुणता मात्र से मनुष्य का कल्याण सम्भव नहीं है।

भली भई जु गुर मिल्या, नातर होती हानि।
दीपक जोति पतंग ज्यूँ, पड़ता आप निदान। ।

कबीर दास जी कहते हैं कि सौभाग्यवश मुझे गुरु मिल गया अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ ही जाता तथा मैं सांसारिक आकर्षणों में पड़कर नष्ट हो जाता।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरंत। ।

माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई विरला ही गुरु कृपा से इससे बच पाता है।

संसै खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जे बेधे गुरु अ''ारां, तिनि संसा चुनिचुनि खद्ध। ।

अधिकांश मनुष्य संशय से ग्रस्त रहते हैं। किन्तु गुरु उपदेश से संशय का नाश संभव है।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल।
पांसि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल। ।

सद्गुरु मिलने पर भी यह आवश्यक है कि साधना द्वारा मन को निर्मल किया जाये अन्यथा गुरु मिलन का संयोग भी व्यर्थ चला जाता है।

बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि। ।

कबीर दास जी कहते हैं कि कर्मकाण्ड रूपी नाव से भवसागर पार करना कठिन था, अत: मैंने कर्मकाण्ड छोड़कर गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से आसानी से सिद्धि प्राप्त कर ली।

गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार। ।

गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। जो साधक अहंता का भाव त्याग देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगे भीख। ।

सद्गुरु के मार्गदर्शन के अभाव में साधना अधूरी रह जाती है और ऐसे लोग संन्यासी का वेश बनाकर केवल भिक्षा मांगते रहते हैं।

सतगुर साँचा, सूरिवाँ, तातैं लोहि लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताई लिया ततसार। ।

इस साखी में कबीर दास जी ने सद्गुरु के लिए सोनार और लोहार का दृष्टान्त दिया है। सोनार की भाँति गुरु-शिष्य को साधना की कसौटी पर परखता है फिर लोहार की भाँति तपाकर शिष्य के मन को सही आकार देता है।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घना, बाँटे नहीं कबीर। ।

कबीर दास जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से आत्म-ज्ञान का आनन्द मुझे मिला है, किन्तु चाह कर भी मैं इस आनन्द को दूसरों के साथ बाँट नहीं सकता क्योंकि आत्मानुभूति के लिए व्यक्ति को स्वयं साधना करनी पड़ती है।

सतगुर हम सूँ रीझि करि, कहा एक परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग। ।

सद्गुरु ने प्रसन्न होकर हमसे एक रहस्य की बात बतलायी, जिससे प्रेम का बादल इस प्रकार बरसा कि हम उसमें भींग गये।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।
अंतरि भीगी आतमाँ, हरी भई बनराई। ।

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के बताये हुए मार्ग से प्रेम का बादल उमड़कर हमारे ऊपर बरसने लगा। हमारी अन्तरात्मा भीग गयी और जीवन रूपी वनराशि हरी हो गयी।

:: सुमिरन ::

कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोइ।
राम कहें भल होइगा, नहिं तर भला न होइ। ।

कबीरदास कहते हैं कि मैं कहता जाता हूँ अर्थात् बराबर कहता रहा हूँ और सभी मेरी बात सुनते भी हैं, किन्तु मेरे उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता। मेरा कहना यही है कि प्रभु के स्मरण से ही कल्याण होगा और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस।
राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस। ।

कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम-नाम ही वास्तव में सार वस्तु है।

तत्त तिलक तिहुँ लोक मैं, रामनाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार। ।

तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्त्व रामनाम है और वही अपना भी सार है। भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार। ।

प्रभु की भक्ति और उनके नाम का भजन (जप) यही वस्तुतः सार है और सब बातें अपार दुःख हैं। कबीर का यह कहना है कि मन, वचन और कर्म से प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चितवै दास।
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास। ।

दास कबीर कहते हैं कि मैं तो केवल हरि नाम का चिन्तन करता हूँ और किसी वस्तु का चिन्तन नहीं करता। जो लोग राम को छोड़कर और कुछ चिन्तन करते हैं, वे बन्धन और मृत्यु में फँसते हैं।

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रहा, सीस नवावौं काहि। ।

मेरा मन राम का स्मरण करते-करते राममय हो गया। ऐसी स्थिति में अब मैं किसको नमस्कार करूँ?

तूँ तूँ करता तू भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ। ।

मुझमें अहंभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है।

कबीर निरभै राम जपु, जब लगि दीवै बाति।
तेल घटै बाती बुझै, (तब) सोवैगा दिन राति। ।

कबीर कहते हैं कि जब एक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी वर्तिका विद्यमान है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक निर्भय होकर राम नाम का स्मरण करो। जब तेल घटने पर बत्ती बुझ जायेगी अर्थात् शक्ति क्षीण होने पर जब जीवन

समाप्त हो जायेगा तब तो तू दिन-रात सोयेगा ही अर्थात् मृत हो जाने पर जब तेरा शरीर निश्चेतन हो जायेगा, तब तू क्या स्मरण करेगा ?

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
इक दिन सोवन होइगा, लम्बे पाँव पसारि। ।

कबीर जीव को चेतावनी देते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोते हुए क्या कर रहा है? जग कर अर्थात् इस निद्रा को त्याग कर भगवान का स्मरण कर। एक दिन तो तुझे पैर फैलाकर चिर निन्द्रा में मग्न होना ही है।

कबीर सूता क्या करै, गुन गोविंद के गाई।
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाई। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोया हुआ क्या कर रहा है? तू प्रभु का गुणगान क्यों नहीं करता है? तेरे सिर पर यमराज खड़ा है। तू भी काल-ग्रस्त हो जाएगा, बचेगा नहीं। इसलिए जीवन रहते हुए सचेत होकर भगवान का स्मरण कर।

केसौ कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय असरार।
राति दिवस कै कूकनै, कबहुँक लगे पुकार। ।

प्रभु को निरन्तर आर्त्त स्वर से पुकारते रहो। घोर निद्रा में न पड़े रहो। दिन-रात की पुकार से, सम्भव है, कभी सुनवाई हो जाये और तुम्हारी पुकार लग जाये।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम। ।

जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुनाँ ज्यूँ आया त्यूँ जाव। ।

कबीर कहते है कि जिसने प्रभु के प्रेम का अनुभव नहीं किया उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर में अतिथि के आने-जाने के समान है।

पहिलै बुरा कमाई करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की ओट। ।

पहले अर्थात् पूर्व जन्म में अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जो पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ। ।

यदि प्रभु का तनिक भी नाम-स्मरण किया जाये तो वह पूर्व जन्म के करोड़ों दुष्कर्मों को क्षण भर में ढकेल कर नष्ट कर सकता है। किन्तु-भक्ति के बिना मनुष्य चाहे अनेक युगों तक पुण्य करे, उसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सकता है।

जिहि हरि जैसा जानियां, तिनकौ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ। ।

प्रभु को जिसने जिस प्रकार पहचाना है, उसी प्रकार उसको लाभ प्राप्त होता है। जब तक प्यासा पानी में डुबकी नहीं लगाता, तब तक केवल ओस चाटने से प्यास नहीं जाती।

राम पियारा छांडि करि, करै आन का जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन सौं बाप। ।

जो परम मित्र परमात्मा राम को छोड़कर अन्य देव-देवी का जप करता है, वह वेश्या के पुत्र के समान है, जो अपने वास्तविक पिता को नहीं जानता। वस्तुतः परमात्मा ही सबका पिता है, अन्य कोई नहीं।

कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ। ।

कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं राम का जप करना ही चाहिए, उसे औरों से भी 'राम' कहलवाना चाहिए। जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण नहीं करता है, उससे बार-बार कहलाना चाहिये।

जैसे माया मन रमैं, यौं जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल बेधि कै, जहाँ के सो तहँ जाइ। ।

जिस प्रकार जीव का मन माया में रमण करता है, उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह ब्रह्म में लीन हो सकता है।

लूटि सकै तौ लूटि लै, राम नाम की लूटि।
फिर पाछे पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि। ।

मानव शरीर ही एक ऐसी योनि है जिसमें साधना सम्भव है। जब यह शरीर छूट जाएगा तो यह आध्यात्मिक साधना संभव न हो सकेगी और तब पछताओगे कि एक ईश्वर प्रदत्त अवसर को गँवा दिया।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं गहेगा, रूँधै दसों दुवार। ।

राम नाम का अक्षय भण्डार यथाशक्ति लूट लो। जब काल तुम्हारे कंठ को दबोचेगा, तब शरीर के दसों द्वार अवरुद्ध हो जायेंगे। उस समय तुम चेतना-शून्य को जाओगे और राम नाम का स्मरण कैसे कर सकोगे ?

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार। ।

पथिक का घर बहुत दूर है और मार्ग केवल लम्बा ही नहीं, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। इसी प्रकार प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है। इसलिए चेत जाओ और गुरु की सहायता से मार्ग से विनों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

गुन गाए, गुन ना कटै, रटै न, राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै दुर्लभ जोग। ।

प्रभु का केवल गुणगान करने से कि वह सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और कीर्तन-भजन करने से प्रकृति का त्रिगुणात्मक बन्धन नहीं कट सकता। यदि भक्त हृदय से उसका स्मरण न करता रहे तो प्रभु से वियोग बना रहता है।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं ठाम। ।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के भक्ति-मार्ग में बड़ी कठिनाई है। यह कठिनाई उसी प्रकार की है जेसै सूली के ऊपर नट द्वारा दिखलायी जाने वाली कला, जिसमें हमेशा यह भयावह स्थिति बनी रहती है कि यदि वह गिरा तो उसके बचने का कोई सहारा नहीं है।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत। ।

कबीर कहते हैं कि जिह्वा से तो राम का मन्त्र जपते रहो और मन से उनका ध्यान करते रहो। मन्त्र जपना प्राण की क्रिया है, ध्यान मन की क्रिया, अतः प्रभु तो सागर के समान हैं इसलिये छिछले तालाब रूपी देव-देवियों के चक्कर में पड़कर महासागर के समान प्रभु को मत भुला दो।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधिहि संधि मिलाइ। ।

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू उस अमर तत्त्व का गुणगान कर, जो अमृत के समान औरों को भी अमर कर देता है। अपने चित्त को प्रभु में उसी प्रकार मिला दे, जैसे जौहरी फूटे हुए नग को संधि से संधि कर अर्थात् आपस में मिलाकर जोड़ देता है।

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।
हरि सुमिरन हाथौं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ। ।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में सर्वत्र विषय वासना रूपी आग लगी हुई है। उसके ताप से तेरा चित्त तप्त हो उठा है। परन्तु हे भक्त! तू घबरा मत। प्रभु के स्मरण-रूपी पावन जल से भरा हुआ घट तेरे हाथ में है अर्थात् तू प्रभु का स्मरण करने की स्थिति में है। उस घड़े से तू विषय-वासना रूपी आग को शीघ्र ही अधीन कर ले अर्थात् बुझा ले।

:: ग्यान बिरह ::

दीपक पावक आँनिया, तेल भि आना संग।
तीन्यँ मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग। ।

ज्योति के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता होती है-दीपक, आग और तेल। इसी प्रकार जीव में ज्ञान रूपी ज्योति तभी आ सकती हैं, जब गुरु जीव-रूपी दीपक में ज्ञान-रूपी अग्नि और प्रेम अथवा भक्ति-रूपी तेल एकत्र कर तीनों को योजित कर दे। ऐसा होने पर फिर तो विषय-वासना रूपी पतिंगे स्वतः आ-आकर जल मरते हैं।

मारा है जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि।
पड़ा पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि। ।

यदि गुरु ने केवल ज्ञान-विहीन बिरह का बाण मारा है, तब भी शिष्य मरेगा अर्थात् अपना या अहंभाव खोयेगा अवश्य। ठीक इसी प्रकार जिसमें केवल रागात्मक बिरह है, वह भी अहंभाव खोएगा, किन्तु बहुत समय के बाद। जिसको ज्ञान संयुक्त बिरह का बाण लगा है, वह शीघ्र ही अहंभाव खो देगा।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसनि रही विभूति। ।

ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, उसमें योगी के सारे संचित कर्मों की झोली जल गयी और क्रियमाण कर्म-रूपी भिक्षापात्र भी टूट-फूट गया अर्थात् अब उसका भी योगी पर कोई प्रभाव न रहा। उसके भीतर जो तत्त्व साधना कर रहा था, वह ब्रह्म में विलुप्त हो गया। अब आसन पर केवल भस्म रह गया अर्थात्

साधक अपने पूर्व रूप में न रह कर कण अवशेष मात्र प्रतीक रूप में कहने-सुनने को रह गया।

आगि जु लागी नीर महिं, कांदौ जरिया झारि।
उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि। ।

पानी में आग लग गयी और उसका कीचड़ सम्पूर्णतया जल गया अर्थात् अवचेतन में जो दूषित संस्कार और वासनाएँ हैं वे भस्म हो गईं। उत्तर-दक्षिण के पंडित (पोथी तक सीमित ज्ञान वाले पंडित) अर्थात् चारों ओर के शास्त्री विचार कर हार गये पर इसका मर्म किसी की समझ में न आया।

दौं लागी सायर जला पंखी बैठे आई।
दाधी देह न पालवै, सद्गुरु गया लगाइ। ।

ज्ञान-विरह की अग्नि से मानस-सरोवर जल गया। अब हंस-रूपी शुद्ध जीव ऊपर स्थित हो गया अर्थात् वासनाओं और पृथक् वैयक्तिक सत्ता से विमुक्त हो गया। पृथक् वैयक्तिक सत्ता रूपी देह भस्म हो गयी। अब वह पुनः नहीं पनप सकती अर्थात् स्वयं का अहंभाव सदा के लिए जाता रहा। अब वह पुनः पल्लवित न हो सकेगा।

गुरु दाधा चेला जला, बिहरा लागी आगि।
तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे के लागि। ।

गुरु ने बिरह की आग लगायी। उस आग में चेला जल गया अर्थात् उसके भीतर पूर्ण रूप से विरह की आग व्याप्त हो गई। सामान्यतया आग लगने से तिनका जलकर राख हो जाता है। परन्तु विरह की आग ऐसी होती है जिससे बेचारे क्षुद्र चेले-रूपी तिनके का उद्धार ही हो जाता है, क्योंकि उस बिरह से तृण का भस्म से और चेले का पूर्ण से आलिंगन हो जाता है।

अहेड़ी दौ लाइया मिरग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ। ।

गुरु-रूपी शिकारी शिष्य के मन-रूपी देहात्मक वन में ज्ञान-विरह की आग लगाता है और वह वासनासक्त जीव-रूपी मृग चिल्ला-चिल्लाकर रोता है कि जिस विषय-वासना-रूपी वन में भोग कर रहे थे, वह अब जल रहा है, नष्ट हुआ जा रहा है। अर्थात् मृग और आसक्ति-मुक्त जीवन में केवल भेद यह है कि मृग को वन का मोह बना रहता है, परन्तु आसक्ति-मुक्त जीव को क्षण भर के लिए धक्का-सा तो लगता है, परन्तु बाद में उसे मधुर शांति का अनुभव होता है।

पांनीं मांहीं परजली, भई अपरबल आगि।
बहती सरिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि। ।

जब गुरु ने ज्ञान-विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित की तो प्रबल ज्वाला उठी और विषयासक्त जीव प्रज्ज्वलित हो गया। इन्द्रियों का कार्य समाप्त हो गया और जीवात्मा रूपी मत्स्य ने विषय-वासनामयी जल को त्याग दिया।

:: परचा (परिचय) ::

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।
पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक वीठा तेनि। ।

कबीर कहते हैं कि परमात्मा की ज्योति इतनी शक्तिशाली है मानों सूर्य की श्रेणी उदय हुई हो। परन्तु इस ज्योति रूपी ज्ञान का अनुभव सबको नहीं होता। जो व्यक्ति मोह-निद्रा में सोता नहीं रहता, परमात्मा के साथ जागता रहता है, उन्हीं के द्वारा यह रहस्य देखा जाता है।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान। ।

परब्रह्म के प्रकाश का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान आदि साधन तो मायिक जगत् के हैं। उसका साक्षात्कार इन किसी भी साधनों के क्षेत्र में नहीं है। उसका सौन्दर्य व्याख्यान से परे है। उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुआ निरन्तर वास।
कवँल जु फूला फूल बिना, को निरखै निज दास। ।

कबीर कहते हैं कि मैं ससीम से परे अर्थात् पारकर असीम में पहुँच गया और वहाँ मेरी शाश्वत स्थिति हो गई। वहाँ मैंने अनुभव किया कि बिना किसी फूल के एक कमल खिला हुआ जिसे प्रभु-भक्त के सिवाय भला और कौन देख सकता है ?

अन्तरि कँवल प्रकासिका, ब्रह्म वास तहँ होइ।
मन भँवरा तहँ लुबधिया, जानैगा जन कोइ। ।

हृदय के अंतर्मन में कमल अर्थात् ज्योति प्रकाशित हो रही है। वहाँ ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भौंरा उस कमल रूपी ज्योति पर लुब्ध होकर उसमें विचरण करता रहता है। इस रहस्य को केवल प्रभु का भक्त ही जान सकता है।

सायर नाहीं सीप नहिं, स्वाति बूँद भी नाँहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिखर गढ़ माँहि। ।

कबीर कहते हैं कि वहाँ न तो सागर है न सीप है और न ही स्वाति-बूँद अर्थात् मोती में उत्पन्न होने के जितने संभावित कारण हैं, उनमें से एक भी विद्यमान नहीं है, फिर भी इस शरीर के भीतर सहस्त्रार में मोती उत्पन्न हो रहा है अर्थात् एक अद्‌भुत ज्योति का साक्षात्कार हो रहा है।

घट माँहैं औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट। ।

कबीर कहते हैं कि गुरु ने मार्ग दर्शन किया। परिणामस्वरूप इस शरीर में ही मैंने एक विकट मार्ग का अनुभव किया और उस विकट मार्ग से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। वहाँ मुझे सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार हुआ।

सूर समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख। ।

जब सूर्य नाड़ी चन्द्र नाड़ी में समाहित हो जाती है अर्थात् सुषुम्ना में चलने लगती है, तब मन का स्वेच्छित फल मिल जाता है। यह पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही परिणाम है।

हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम। ।

कबीर ने सीमित से आगे बढ़कर असीम को प्राप्त कर लिया है। अब वह शून्य के आनन्द-सागर में अवगाहन कर रहे हैं। जो स्थान बड़े-बड़े मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, वहाँ पहुँचकर कबीर पूर्ण विश्राम कर रहे हैं।

देखौ करम कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं सो दोसत किया अलेख। ।

कबीर कहते हैं कि यह मेरे किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल है कि जिस स्थान को बड़े-बड़े मुनि नहीं प्राप्त कर सकते हैं, वह मुश्किल लक्ष्य, निराकार सत्ता कबीर के लिए प्रिय के समान प्राप्त है।

मन लागा उनमन्न सौ, गगन पहूँचा जाइ।
चाँद बिहूँना चांदिना, अलख निरंजन राइ। ।

मेरा मन एक संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था के ऊपर राम के मन में मिल गया। वहाँ मैंने एक विचित्र प्रकाश का अनुभव किया, जो कि बिना चन्द्रमा के ही चाँदनी जैसा शीतल और स्निग्ध था। मैंने वहीं उस त्रिगुणातीत, निर्गुण, निराकार सत्ता का दर्शन किया है, जो कि स्थूल इन्द्रियों की पहुँच से परे है।

मन लागा उनमन्न सो, उनमन मनहि विलग।
लौंन विलंगा पानियाँ, पानीं लौंन विलग। ।

कबीर कहते हैं कि मेरे संकल्प-विकल्पात्मक मन ने अपना स्वभाव छोड़ दिया और राम के मन में उसी प्रकार से सानिध्य हो गया जैसे नमक और जल मिलकर एक हो जाते हैं।

पानी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ। ।

मानव के भीतर जो साक्षि-चैतन्य है, जो चिन्मात्र है, वह पानी के समान है। वही चिन्मात्र अन्त:करण से परिसीमित होकर चिदाभास का रूप ग्रहण करता है। यह चिदाभास हिम अर्थात् बर्फ के समान है, क्योंकि जल की अपेक्षा में यह स्थूल है। जैसे बर्फ गलकर फिर पानी की अवस्था में आ जाती है, वैसे ही अन्त:करण में जो चिदाभास है, वह फिर लीन होने पर चिन्मात्र हो जाता है अर्थात् जीव ब्रह्म के रूप में आ जाता है।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि। ।

यह बहुत अच्छा हुआ कि मैं अपनी सांसारिक दशा को भूल गया और वास्तविक स्वरूप में परिणत हो गया। यह वैसे ही है जैसे हिम परिणत होकर जल हो जाता है और लुढ़क कर किनारे के जल से विलीन हो जाता है।

चौहटै चिंतामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीराँ मुझसू मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि। ।

जीवन-यात्रा में मैं उस चौराहे पर पहुँच गया हूँ जहाँ प्रभु से साक्षात्कार हो गया है। परन्तु अर्न्तमन में स्थित काम, क्रोध, मोह रूपी डाकू मेरी उस अमूल्य निधि को छीन लेना चाहते हैं। हे दया के सागर मेरे ऊपर दया करो जिससे अब मैं इन सबों के चक्कर में न पड़ूँ।

पंखि उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस।
पानी पीया चंचु बिनु, भूलि या यहु देस। ।

जीव-रूपी पक्षी (हंस) कुण्डलिनी के सहारे सहस्त्रार तक उड़ गया अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया और यह भौतिक शरीर अपने स्थान पर यों ही पड़ा रहा, जो कि अब उस जीव के लिए परदेश-सा हो गया है। जब जीव को परमतत्त्व का अनुभव नहीं था, तब उसके लिए शरीर स्वदेश और परमतत्त्व परदेश था। अब परमतत्त्व स्वदेश हो गया और शरीर परदेश हो गया।

उसने इन्द्रियों के बिना ही आनन्द रस का पान किया और सांसारिक दशा को भूल गया अर्थात् इससे अब उसकी आसक्ति जाती रही।

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप। ।

साधना की प्रगति में साधक स्थूल से सूक्ष्म, शब्द से अशब्द, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष, साकार से निराकार, ससीम से असीम, अहंकार से निराहंकार की ओर बढ़ता चला जाता है और जब वह अशब्द, निराकार, अप्रत्यक्ष और निराहंकार अवस्था पर पहुँचता है, तब उसे ब्रह्म-तत्त्व का वास्तविक दर्शन होता है।

आया था संसार में, देखन कौ बहुत रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप। ।

कबीर कहते हैं कि हे संतों ! मैंने संसार में अनेक रूप देखने के लिए जन्म लिया था, परन्तु इन्हीं रूपों के भीतर अनुपम तत्त्व, जो अरूप हैं, मेरी दृष्टि में पड़ गया अर्थात् मुझे अनुपम तत्त्व का दर्शन हो गया।

धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं तोया नहिं तारा।
तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा। ।

कबीर कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, अग्नि ये पाँचों तत्त्व नहीं थे। उस समय केवल हरि ओर उनके भक्त (जीव), अंशी और अंश ही थे।

जा दिन किरतम नां हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाट। ।

जिस समय यह सृष्टि नहीं थी, संसार-रूपी बाजार नहीं था, उस समय केवल रामभक्त आदि गुरु कबीर था, जिसको लक्ष्य तक पहुँचने के कठिन और दुर्गम मार्ग का ज्ञान था।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ। ।

सद्गुरु की कृपा से मैं तत्त्व में प्रतिष्ठित हो गया और मेरा मन अब स्थिर हो गया है, उसकी चंचलता जाती रही। मेरे भीतर अनन्य चरितार्थ हो गया और हृदय में भगवान त्रिभुवनपति विराजमान हो गए।

हरि संगति सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरिप्रगटा आप। ।

अनन्तर में आत्म-दर्शन होने पर प्रभु से तादात्म्य हो गया, मोह की ज्वाला मिट गई और मैं निरन्तर आनन्द-निधि का अनुभव कर रहा हूँ।

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ। ।

दर्शन मात्र होने से मन में पूर्ण निश्चय हो गया, संशय हमेशा के लिए समाप्त हो गया। उस स्थिति का मैं शब्द-व्याख्या नहीं कर सकता। मोह की ज्वाला जल में परिणत हो गयी। जलती हुई मोह की आग पूर्ण रूप से बुझ गयी अर्थात् परिचय द्वारा पूर्ण शान्ति आ गयी।

जिनि पाया तिनि सुगहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि।
रतन निराला पाइया, जगत ढंढोल्या बादि॥

जिन्होंने परम तत्त्व को प्राप्त किया, उन्होंने पूर्ण रूप से हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया है, उसके माधुर्य का उन्होंने पूर्ण रूप से आस्वादन किया। उनको एक अनुपम रत्न मिल गया है। वह अब जगत् में और कुछ ढूँढ़ना व्यर्थ समझते हैं अर्थात् परमार्थ के प्राप्त होने पर अन्य अर्थ की क्या आवश्यकता है ?

कबीर दिल साबित भया, पापा फल समरत्थ।
सायत माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्थ। ।

कबीर कहते हैं कि मैं भव-सागर में अपने इष्ट को टटोल रहा था। गुरु कृपा से मेरे हाथ हीरा ही आ गया अर्थात् सर्वोत्कृष्ट इष्ट मुझे प्राप्त हो गया। फिर तो मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया और मैंने जीवन का सर्व-अर्थकारी परमोत्कृष्ट सम्यक्-लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाँहि॥

मनुष्य में जब तक अहम विद्यमान रहता है तब तक प्रभु दर्शन दुर्लभ होता है। अहम मिटते ही प्रभु से मिलन हो जाता है। प्रेम की यह विशेषता है कि यद्यपि यह प्रारम्भ दो में होता है, तथापि जब तक द्वैत बना रहता है, तब तक उसमें परिपूर्णता नहीं आती।

जा कारणि मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाई॥

जिसके दर्शन के लिए मैं परेशान था वह आज मेरे सम्मुख है। परन्तु मैं इस संकोच में पड़ा हूँ कि कितना पाप-पंकिल, क्षुद्र-जीव हूँ और मेरा प्रिय कितना शुभ्र और महान् कि मैं पैर पकड़ने का भी साहस न कर सका।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया ठौर।
सोई फिरि आपन भया, जाको कहता और। ।

जिसके लिए मैं इधर-उधर भटक रहा था, उसको अपने भीतर ही पा लिया। जिसको मैं अन्य कहता था, अब देखता हूँ कि वही वास्तविक अपना है।

कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज पारस धनी, नैननि रहा समाय॥

भाग्योदय हुआ उसका साक्षात्कार हुआ, जो अगम था, जिस तक किसी की पहुँच न थी। उसके गौरव और महात्मय का वर्णन असम्भव है। वह ज्योति-पुंज है और अपने स्पर्श से पापी को भी पुण्यात्मा बनाने वाला पारस जैसा सौभाग्य-दायक है। अब वह मेरे नेत्रों में समा गया है अर्थात् मेरी दृष्टि से विलुप्त नहीं होता।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं॥

जीव सुषुम्नामार्ग से पहुँचकर शून्य शिखर पर स्थित अमृत कुड में केलि कर रहा है और आनन्द रूपी मोती स्वच्छन्द रूप से जी भर कर चुग रहा है। इस आनन्द को छोड़कर वह अन्यत्र सांसारिक विषयों की ओर नहीं जा सकता।

गगन गरजि अमृत चुवै, कदली कँवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदगी, कै कोई निज दास॥

आकाश के गर्जन से वह अनहद नाद जो सहस्त्रार में नित्य हुआ करता है और वहाँ से अमृत के समान शक्ति का क्षरण होता रहता है। मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में चक्रों का प्रकाश होता रहता है। कबीर कहते हैं कि इस अपूर्व अनुभूति के प्रत्यक्ष होने पर सिर झुक जाता है अथवा कोई और प्रभु का भक्त हो, जिसे यह अनुभूति हो जाय तो उसका सिर झुक जाएगा।

नींव बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव॥

शून्य शिखर तक पहुँचने पर जीव को एक ऐसे दिव्य भाव का दर्शन होता है, जिसका सादृश्य स्थूल जगत् में नहीं मिलता। स्थूल जगत् में सुदृढ़ नींव पर बने हुए ईंट-पत्थर के देवालय में देव का दर्शन होता है, किन्तु वहाँ पर बिना किसी नींव के देवालय में देव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है और वह देव भी निराकार होता है। कबीर उसका अनुभव कर उसमें रम गया और अलक्ष्य सत् की सेवा में लग गया।

देवल माँहे देहुरी, तिल जेता बिस्तार।
माँहे पाती माँहि जल, माँ है पूजन हार॥

इसी शरीर रूपी देवालय में प्रवेश करने के लिए देहली विद्यमान है, जिसकी परिधि तिल के समान सूक्ष्म है। इस देवालय में बाहर से जल, पत्र आदि नहीं लाया जाता, भीतर ही पत्र है, जल है और पूजने वाला भी है।

कबीर कँवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर॥

कबीर कहते हैं कि सहस्त्रार के प्रकाश का भान हो गया, ज्ञान का सूर्य उदय हो गया, अज्ञान की अँधेरी रात समाप्त हो गई और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी।

आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि।
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥

गगम-मण्डल में एक सहस्त्रार-रूपी अधोमुख कुआँ है जिसका मुख नीचे की ओर है, पाताल अर्थात् मूलाधार चक्र में पनिहारिन-रूपी कुण्डलिनी स्थित है। जब साधना द्वारा वह सुषुम्ना मार्ग से होकर सहस्त्रार में पहुँचती है, तब शुद्ध जीव उसके अमृत-जल को पीने में समर्थ होता है। इस मूलतत्त्व पर किसी बिरले ने ही विचार किया है अर्थात् इसे कोई बिरला ही समझता है।

सिव सक्ति दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि। ।

सिद्धों, नाथ योगियों और कबीर में 'सक्ति' इड़ा का प्रतीक है और 'सिव' पिंगला का। जब मछली रूपी कुण्डलिनी ऊपर सहस्त्रार तक पहुँच जाती है, तब सिंह-रूपी जीव मानसरोवर में अवगाहन करने लगता है। अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण तभी संभव होता है, जब इड़ा-पिंगला में स्थित प्राण-अपान वायु तुल्यबल हो जाये। किन्तु कोई ऐसा विरला ही जीव है, जो इस मार्ग का अनुसंधान कर सकता है।

अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुभौ उतर्या पार॥

कबीर कहते हैं कि जब शुद्ध अनाहत नाद का परिचय हो जाता है, तब संकल्प-विकल्पात्मक मन उसी में लय को प्राप्त हो जाता है। हमने उसका परिचय प्राप्त कर लिया है और अपने अनुभव से भव-सागर के पार उतर गये हैं।

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि। ।

प्रभु प्रेम ने रहस्य का द्वार खोल दिया। इससे मुझको दयामय प्रभु का दर्शन हो गया। अब ममता मेरा क्या बिगाड़ सकती है? अहं और मम का भाव ही समाप्त हो गया है और भव का कष्ट सुख की चादर बन गया अर्थात् सभी दु:ख आनन्द में परिणत हो गए।

:: लाँबि ::

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हैरी जाइ॥

जैसे बूँद समुद्र को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब उसमें मिल जाती है, तब उसका पृथक् अस्तित्त्व नहीं रह जाता है। वैसे ही परम को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरा अहं उसी में खो गया और उसका पृथक् अस्तित्त्व समाप्त हो गया। अर्थात् यह जीव जो पहले नाम-रूप को लेकर 'अहं' बना हुआ था, अब प्रभु की खोज में चलते-चलते नाम-रूप से पृथक् होकर प्रभु से तादात्म्य प्राप्त कर लिया है।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
समुंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ॥

कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तों ! प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वंय खो गया। समुद्र (अंशी) ने बूँद (अंश) को आत्मसात् कर लिया। अब उस बूँद का पृथक् अस्तित्त्व कैसे खोजा जा सकता है ? अर्थात् एक बार प्रभु से आत्मसात् होने के पश्चात् उससे विरक्त नहीं हुआ जा सकता।

6

कबीर के दोहे

कस्तूरी कुन्डल बसे, मृग ढूढ़ै बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन् कुल खोय।।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुरि करेगौ कब।।

कामी लज्जा ना करै, न माहें अहिलाद।
नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगे स्वाद।।

कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहां से खाय।।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।

कर बहियां बल आपनी, छोड़ बीरानी आस।
जाके आंगन नदि बहे, सो कस मरत प्यास।।

कथनी कथी तो क्या भया जो करनी ना ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूं देखत ही ढहि जाइ।।

कबिरा गरब न कीजिये, कबहूं न हंसिये कोय।
अबहूं नाव समुंद्र में, का जाने का होय।।

कबीरा गर्व ना किजीये, ऊंचा देख आवास।
काल परौ भुइं लेटना, उपर जमसी घास।।

कबीरा खड़ा बजार में, सब की चाहे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।

कबीरा सोई पीर हैं, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर।।

कबीरा ते नर अँध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।

कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान।
जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान।।

कबीर सुता क्या करे, करे काज निवार।
जिस पंथ तू चलना, तो पंथ संवार।।

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि।।

कबीर तूं काहै डरै, सिर पर हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहि डोलिये, कुकर भूखे साथ।।

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यान षड्ग गहि, काल सिरि, भली मचाई मार।।

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।

कबीर नवै सब आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय।।

सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम।।

सतनाम जाने बिना, हंस लोक नहिं जाए।
ज्ञानी पंडित सूरमा, कर कर मुये उपाय।।

सुख में सुमिरन ना किया, दुःख में करते याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।

साई इतना दीजिए जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।।

सुमिरन करहु राम का, काल गहै है केस।
न जानो कब मारिहै, का घर का परदेस।।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच हें, वाके हिरदय आप।।

सहज सहज सब कोऊ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजैं विषया तजी, सहज कहीजै सोइ।

सुखिया सब संसार है खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।।

सात समंदर की मसि करौं लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं हरि गुण लिखा न जाइ।।

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भांड तोड़ि करि, रहै निराला होय।।

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उड़ाय।।

साधू गाँठ न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरी खड़े जब माँगे तब देय।।

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन।।

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोओ तू फूल।
ताहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।।

जो जल बाढ़े नांव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।

जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाये।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय।।
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी बन डरी, रही किनारे बैठ।।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तो ड़ाल दे, दया करे सब कोय।।

जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं वहाँ काम।
दोनों कबहूँ नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम।।

जहां दया तहं धर्म है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है, जहां क्षमा आप।।

जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साई तुझ में है, तू जाग सके तो जाग।।

जब में था हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटी गया, जब दीपक देख्या माहिं।।

जब तूं आया जगत् में, लोग हसें तू रोए।
एसी करनी ना करी, पाछे हसें सब कोए।।

जीवत समझे जीवत बुझे, जीवत ही करो आस।
जीवत करम की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आस।।

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव।।

ज्यों नैनों में पुतली, त्यों मालिक घट माहिं।
मूरख लोग ना जानहीं, बाहिर ढूंढ़न जाहिं ।।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंड़ित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंड़ित होय।।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रूचौ, सीस देइ ले जाय।।

पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि की जोत।।

पूरब दिसा हरि को बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल महं खोजु, दिलहि में खोजो यही करीमा रामा।।

पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय।।

पहले अगन बिरहा की, पाछे प्रेम की प्यास।
कहे कबीर तब जानिए, नाम मिलन की आस।।

पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।

परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि।
खूणैं बेसिर खाइय, परगट होइ दिवानि।।

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़िता खाहिं।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं।।

पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिनि के, घर घर माँगी भीख।।

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ कै, साबित गया न कोय।।

चारिउं वेदि पठाहि, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढ़े खेत।।

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।।

माली आवत देख कै कलियन करी पुकार।
फूली फूली चुन लिए, काल्हि हमारी बार।।

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार दे, मन का मनका फेर।।

माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर।।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि ईवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत।।

मन माया तो एक हैं, माया नहीं समाय।
तीन लोक संसय परा, काहि कहूं समझाय।।

माटी कहे कुम्हार से, तु क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूगी तोय।।

मूरख संग ना कीजिए, लोहा जल ना तिराइ।
कदली, सीप, भुजंग-मुख, एक बूंद तिहँ भाइ।।

मांगण मरण समान है, बिरता बंचौ कोई।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मति रे मंगावे मोहि।।

मुंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहू क्या करे, जे मन के औरे काम।।

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

एक राम दशरथ का प्यारा, एक राम का सकल पसारा।
एक राम घट घट में छा रहा, एक राम दुनिया से न्यारा।।

एकै साध सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, फूले फल अघाय।।

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोइ।
आपन को सीतल करे, और हु सीतल होइ।।

एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारी।
है जैसा तैसा रहे, कहे कबीर बिचारी।।

धरती सब कागद करूं, लेखनी सब बनराय।
साह सुमुंद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय।।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, तु आए फल होय।।

रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर सत्त गुन हरि सोई।
कहै कबीर राम रमि रहिये हिन्दू तुरक न कोई।।

रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी बदले जाय।।

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं चली, हो गई लाल गुलाल।।

लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट।।

ऊंचे कुल का जनमिया, जे करणी ऊंच होइ।
सुबण कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोइ।।

उठा बगुला प्रेम का तिनका चढ़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला तिन का तिन के पास।।

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोबिंद दियो मिलाय।।

गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानि।।

गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिर फिर गोता खाहि।।

गुरु लोभ शिष लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाँव।।

गाँठि न थामहिं बाँध ही, नहिं नारी सो नेह।
कह कबीर वा साधु की, हम चरनन की खेह।।

हीरा पड़ा बाजार में, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारख लिया उठाय।।

तिनका कबहुँ ना निंदये, जो पाँव तले होय।
कबहुँ उड़ आँखों पड़े, पीर घानेरी होय।।

बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।।

बोली एक अनमोल है, जो कोइ बोलै जानि।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आनि।।

दोष पराए देख कर चल्या हंसत हंसत।
अपनै चीति न आबई जाको आदि न अंत:।।

दर्शन करना है तो, दर्पण माँजत रहिये।
दर्पण में लगी कई, तो दर्श कहाँ से पाई।।

दु:ख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे दु:ख काहे को होय ।।

नये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय।।

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

आय हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जात जंजीर।।

अकथ कहानी प्रेम की, कुछ कही न जाये।
गूंगे केरी सर्करा, बैठे मुस्काए।।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।

यह तन विषय की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

7

कबीर की रचनाएँ

कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयांगम कर लिया। संत कबीर ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। कबीरदास अनपढ़ थे। कबीरदास के समस्त विचारों में राम-नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं-

- रमैनी
- सबद
- साखी

इसमें वेदांत तत्त्व, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेम साधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधन की गौणता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं। सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः 'साखी' के भीतर हैं, जो दोनों में हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी

बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

यह ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंग न भूलि । - कबीर
काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राम की ओट । - कबीर
हम देखत जग जात हैं, जब देखत हम जांह।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह । - कबीर

बीजक

'बीजक' कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है, इसमें संदेह नहीं। एक ध्यान देने योग्य बात इसमें यह है कि 'बीजक' में 84 रमैनियाँ हैं। रमैनियाँ चौपाई छंद में लिखी गई हैं। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं। जिनके अंत में एक-एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानों इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है। जालंधरनाथ के शिष्य कुण्णपाद (कानपा) ने कहा है– 'साखि करब जालंधरि पाए', अस्तु बहुत थोड़ी-सी रमैनियाँ (नं. 3, 28 32, 42, 56, 62, 70, 80) ऐसी हैं जिनके अंत में साखियाँ नहीं हैं। परंतु इस प्रकार उद्धृत करने का क्या अर्थ हो सकता है? इस पुस्तक में मैंने 'बीजक' को नि:संकोच प्रमाण-रूप में व्यवहृत है, पर स्वयं 'बीजक' ही इस बात का प्रमाण है कि साखियों को सबसे अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए, क्योंकि स्वयं 'बीजक' ने ही रमैनियों की प्रामाणिकता के लिए साखियों का हवाला दिया है। इसीलिए कबीरदास के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखियाँ है।

कबीर रचनावली

कबीरदास की वाणियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए है, पर उनमें सबसे अच्छा सुसंपादित संस्करण अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'कबीर' रचनावली है। यह भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ही प्रकाशन है। कबीरदास के पदों में जितने संबोधन हैं उन सबका एक-न- एक खास प्रयोजन है। जब

उन्होंने 'अवधू' या 'अवधूत' को पुकारा है तो यथासंभव अवधूत की ही भाषा में उसी के क्रिया-कलाप की आलोचना की है। इस प्रसंग में उनकी युक्ति और तर्कशैली पूर्णरूप से अवधूत-जैसी रहती है। जब वे पंडित या पाँडे को संबोधित करते हैं तो वहाँ भी उनका उद्देश्य पंडित की ही भाषा में पंडित की ही युक्तियों के बल पर उसके मत का निराश करना होता है। इसी तरह मुल्ला, काजी आदि संबोधनों को भी समझना चाहिए। जब वे अपने-आपकों या संतों को संबोधित करके बोलते हैं तब वे अपना मत प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे अपने मत के मानने वाले को ही 'संत' या साधु कहते हैं। साधारणत: वे 'भाई' संबोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते हैं और जब कभी वे 'जोगिया' को पुकार उठते हैं तो स्पष्ट जी जान पड़ता है कि इस भले आदमी के संबंध में उनकी धारणा कुछ बहुत अच्छी नहीं थी। यह दावा किया गया है कि गुरु-परंपरा की जानकारी रखने वाले लोग कबीरदास के आत्म-संबोधन में एक निश्चित संकेत की बात बताया करते हैं।

अवधू और अवधूत

भारतीय साहित्य में यह 'अवधू' शब्द कई संप्रदायों के सिद्ध आचार्यों के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। साधारणत: जागातिक द्वंद्वों से अतीत, मानापमान-विवर्जित, पहुँचे हुए योगी को अवधूत कहा जाता है। यह शब्द मुख्यतया तांत्रिकों, सहजयानियों और योगियों का है। सहजयान और वज्रयान नामक बौद्ध तांत्रिक मतों में 'अवधूती वृत्ति' नामक एक विशेष प्रकार की यौगिक वृत्ति का उल्लेख मिलता है। आठवीं शताब्दी के बाद से नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी आदि विद्यायतनों में जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ वह एक नवीन ढंग का तांत्रिक और योग क्रियामूलक धर्म था। इस नवीन तांत्रिक मत में तीन प्रधान मतों का संधान पाया जाता है-सहजयान, वज्रयान और काल चक्रयान। इन मतों की अधिकांश पुस्तकें आज तिब्बती अनुवाद के रूप में ही सुरक्षित हैं। स्व. हरप्रसाद शास्त्री ने 'चर्याचयीविनिश्चय', 'दोहाकोष', 'अद्वयवज्रसंग्रह' और 'गुह्य-समाजतंत्र' आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सहजयान और वज्रयान में बहुत कुछ समानता है। शास्त्री जी ने जो चर्यापद प्रकाशित कराए हैं उनमें आर्यदेव, भूसुक, कान्ह, सरह, लुई आदि आचार्यों के पद हैं, जिन्हें तिब्बती साहित्य में सिद्धाचार्य कहा गया है। ये आचार्यगण सहजावस्था की बात करते हैं। सहजावस्था को प्राप्त करने पर ही साधक अवधूत होता है।

तंत्र-ग्रंथों में चार प्रकार के अवधूतों की चर्चा है- ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। हंसावधूतों में जो पूर्ण होते हैं वे परमहंस और जो अपूर्ण होते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं ('प्राण्तोषिणी')। परंतु कबीरदास ने न तो इतने तरह के अवधूतों की कहीं कोई चर्चा ही की है और न उसपर 'निर्वाण-तंत्र' के बताए हुए अवधूत से उनके अवधूत की कोई समता ही दिखाई है। 'हंसा' की बात कबीरदास कहते जरूर हैं पर वे हंस और अवधूत को शायद ही कहीं एक समझते हों। वे बराबर हंस या पक्षी शुद्ध और मुक्त जीवात्मा को ही कहते हैं। इसी भाव को बताने के लिए भर्तृहरि ने कहा है कि इस अवधूत मुनि की बाह्य क्रियाएँ प्रशमित हो गई हैं। वह न दु:ख समझता है, न सुख को सुख। वह कहीं भूमि पर सो सकता है कहीं पलंग पर, कहीं कंथा धारण कर लेता है कहीं दिव्य वसन, कहीं मधुर भोजन पाने पर उसे भी पा लेता है। 'किंतु कबीरदास इस प्रकार योग में भोग को पंसद नहीं करते। यद्यपि इन योगियों के संप्रदाय के सिद्धों को ही कबीर अवधूत कहते हैं तथापि वे साधारण योगी अवधूत के फर्क को बराबर याद रखते हैं। साधारण योगी के प्रति उनके मन में वैसा आदर का भाव नहीं है जैसा अवधूत के बारे में है। कभी-कभी उन्होंने स्पष्ट भाषा में योगी को और अवधूत को भिन्न रूप से याद किया है। इस प्रकार कबीरदास का अवधूत नाथपंथी सिद्ध योगी है।

प्रसिद्ध है कि एक बार काशी के पंडितों में द्वैत और अद्वैत तत्त्व का शास्त्रार्थ बहुत दिनों तक चलता रहा। जब किसी शिष्य ने कबीर साहब का मत पूछा तो उन्होंने जवाब में शिष्य से ही कई प्रश्न किए। शिष्य ने जो उत्तर दिया उसका सार-मर्म यह था कि विद्यमान पंडितों में इस विषय में कोई मतभेद नहीं है कि भगवान, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से परे हैं, गुणों और क्रियाओं के अतीत हैं, वाक्य और मन के अगोचर हैं। कबीरदास ने हसँकर जवाब दिया कि भला उन लड़ने वाले पंडितों से पूछो कि भगवान रूप से निकल गया, रस से निकल गया, रस से अतीत हो गया, गुणों के ऊपर उठ गया, क्रियाओं की पहुँच के बाहर हो रहा, वह अंत में आकर संख्या में अटक जाएगा? जो सबसे परे है वह क्या संख्या के परे नहीं हो सकता? यह कबीर का द्वैताद्वैत-विलक्षण समतत्त्ववाद है।

निरंजन कौन है?

मध्ययुग के योग, मंत्र और भक्ति के साहित्य में 'निरंजन' शब्द का बारम्बार उल्लेख मिलता है। नाथपंथ में भी 'निरंजन' शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में 'निरंजन' शब्द निर्गुण ब्रह्म का और विशेष रूप से शिव का

वाचक है। नाथपंथ की भाँति एक और प्राचीन पंथ भी था, जो निरंजन पद को परमपद मानता था। जिस प्रकार नाथपंथी नाथ को परमाराध्य मानते थे, उसी प्रकार ये लोग 'निरंजन' को। आजकल निरंजनी साधुओं का एक सम्प्रदाय राजपूताने में वर्तमान है। कहते हैं, इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान (निर्गुण) के उपासक थे।

बंगाल के पश्चिमी हिस्सों तथा बिहार के पूर्वी जिलों में आज भी एक धर्ममत है, जिसके देवता निरंजन या धर्मराज हैं। एक समय यह सम्प्रदाय झारखण्ड और रीवाँ तक प्रचलित था। बाद में चलकर यह मत कबीर सम्प्रदाय में अंतर्भुक्त हो गया और उसकी सारी पौराणिक कथाएँ कबीर मत में गृहीत हो गई, परन्तु उनका स्वर बदल गया। नाथपंथ में निरंजन की महिमा खूब गाई गई है। हठयोगी जब नादानुसंधान का सफल अभ्यासी हो जाता है तो उसके समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं, उसके चित्त और मारुत निरंजन में लीन हो जाते हैं। यह योगी का परम साध्य है, क्योंकि जब तक ज्ञान निरंजन के साक्षात्कार तक नहीं उठता तभी तक इस संसार के विविध जीवों और नाना पदार्थों में भेद-दृष्टि बनी हुई है।

कबीर के दोहे

यहाँ कबीरदास के कुछ दोहे दिये गये हैं।

(1) साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जी फिरै, सो तो साधू नाहिं ।

व्याख्या– कबीर दास जी कहते हैं कि संतजन तो भाव के भूखे होते हैं, और धन का लोभ उनको नहीं होता। जो धन का भूखा बनकर घूमता है वह तो साधू हो ही नहीं सकता।

(2) जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी वाणी होय। ।

व्याख्या– संत शिरोमणि कबीरदास कहते हैं कि जैसा भोजन करोगे, वैसा ही मन का निर्माण होगा और जैसा जल पियोगे वैसी ही वाणी होगी अर्थात् शुद्ध-सात्विक आहार तथा पवित्र जल से मन और वाणी पवित्र होते हैं इसी प्रकार जो जैसी संगति करता है वैसा ही बन जाता है।

8

कबीर का समकालीन समाज

महात्मा कबीरदास के जन्म के समय में भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा शोचनीय थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मान्धता से जनता परेशान थी और दूसरी तरफ हिन्दू धर्म के कर्मकांड, विधान और पाखंड से धर्म का ह्रास हो रहा था। जनता में भक्ति- भावनाओं का सर्वथा अभाव था। पंडितों के पाखंडपूर्ण वचन समाज में फैले थे। ऐसे संघर्ष के समय में, कबीरदास का प्रार्दुभाव हुआ। जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे, उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे एक सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति-व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत-से पंडितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म-मत को सम्भालने का प्रयत्न कर रहे थे।

भारतवर्ष कोई नया देश नहीं है। बड़े-बड़े साम्राज्य उसकी धूल में दबे हुए हैं, बड़ी-बड़ी धार्मिक घोषणाएँ उसके वायुमण्डल में निनादित हो चुकी हैं। बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ उसके प्रत्येक कोने में उत्पन्न और विलीन हो चुकी हैं। उनके स्मृति चिह्न अब भी इस प्रकार निर्जीव होकर खड़े हैं मानों अट्टाहस करती हुई विजयलक्ष्मी को बिजली मार गई हो। अनादिकाल में उसमें अनेक

जातियों, कबीलों, नस्लों और घुमक्कड़ खानाबदोशों के झुण्ड इस देश में आते रहे हैं। कुछ देर के लिए इन्होंने देश के वातावरण को विक्षुब्ध भी बनाया है, पर अन्त तक वे दखल करके बैठ जाते रहे हैं और पुराने देवताओं के समान ही श्रद्धाभाजन बन जाते रहे हैं–कभी-कभी अधिक सम्मान भी पा सके हैं। भारतीय संस्कृति कि कुछ ऐसी विशेषता रही है कि उन कबीलों, नस्लों और जातियों की भीतरी समाज-व्यवस्था और धर्म-मत में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया है और फिर भी उनको सम्पूर्ण भारतीय मान लिया गया है। भागवत में ऐसी जातियों की एक सूची देकर बताया गया है कि एक बार भगवान का आश्रय पाते ही ये शुद्ध हो गई हैं। इनमें किरात हैं, हूण हैं, आंध्र हैं, पुलिंद हैं, पुक्कस हैं, आभीर हैं, शुंग हैं, यवन हैं, खस हैं, शक हैं और भी निश्चय ही ऐसी बहुत-सी जातियाँ हैं, जिनका नाम भागवताकार नहीं गिना गए।

समकालीन भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति इतने अतिथियों को अपना सकी थी, इसका कारण यह है कि बहुत शुरू से ही उसकी धर्म-साधना वैयक्तिक रही है। प्रत्येक व्यक्ति को अलग से धर्मोपासना का अधिकार है। झुँड बाँधकर उत्सव हो सकते हैं, भजन नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने किए का जिम्मेदार आप ही है। श्रेष्ठता कि निशानी किसी धर्म-मत को मानना या देव विशेष की पूजा करना नहीं बल्कि आचार-शुद्धि और चारित्र्य है। यदि एक आदमी अपने पूर्वजों के बताए धर्म पर दृढ़ है, चरित्र से शुद्ध है, दूसरी जाति या व्यक्ति के आचरण की नकल नहीं करता बल्कि स्व-धर्म में मर जाने को ही श्रेयस्कर समझता है, ईमानदार है, सत्यवादी है, तो वह निश्चय ही श्रेष्ठ है, फिर वह चाहे आभीर वंश का हो या पुक्क्स श्रेणी का। कुलीनता पूर्वजन्म के कर्म का फल है। चारित्र्य इस जन्म के कर्म का प्रतीक है।

कबीरदास

देवता किसी एक जाति की सम्पत्ति नहीं हैं, वे सबके हैं, और सबकी पूजा के अधिकारी हैं। पर यदि स्वयं देवता ही चाहते हों कि उनकी पूजा का माध्यम कोई विशेष जाति या व्यक्ति हो सकता है तो भारतीय समाज को इसमें भी कोई आपत्ति नहीं है। ब्राह्मण मातंगी देवी की पूजा करेगा पर मातंग के जरिए। क्या हुआ जो कि मातंग चांडाल है। राहु यदि प्रसन्न होने के लिए डोमों को ही दान

देना अपनी शर्त रखते हैं तो डोम सही हैं। समस्त भारतीय समाज डोम को ही दान देकर ग्रहण के अनर्थ से चन्द्रमा की रक्षा करेगा। इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने समस्त जातियों को उनकी सारी विशेषताओं समेत स्वीकार कर लिया। पर अब तक कोई ऐसा 'मजहब' उसके द्वार पर नहीं आया था। वह उसको हजम कर सकने की शक्ति नहीं रखता था।

'मजहब' क्या है?

'मजहब' क्या है? मजहब एक संगठित धर्म-मत है। बहुत-से लोग एक ही देवता को मानते हैं, एक ही आचार का पालन करते हैं, और किसी नस्ल, कबीले या जाति के विशेष व्यक्ति को जब एक बार अपने संघटित समूह में मिला लेते हैं तो उसकी सारी विशेषताएँ दूर कर उसी विशेष मतवाद को स्वीकार कराते हैं। यहाँ धर्म-साधना व्यक्तिगत नहीं, समूहगत होती है। यहाँ धार्मिक और सामाजिक विधि-निषेध एक–दूसरे में गुंथे होते हैं। भारतीय समाज नाना जातियों का सम्मिश्रण था। एक जाति का एक व्यक्ति दूसरी जाति में बदल नहीं सकता, परन्तु मजहब ठीक इससे उल्टा है। वह व्यक्ति को समूह का अंग बना देता है। भारतीय समाज की जातियाँ कई व्यक्तियों का समूह है, परन्तु किसी मजहब के व्यक्ति बृहत् समूह के अंग हैं। एक का व्यक्ति अलग हस्ती रखता है पर अलग नहीं हो सकता, दूसरे का अलग हो सकता है, पर अलग सत्ता नहीं रखता।

मुसलमानी धर्म एक 'मजहब' है। भारतीय समाज संगठन से बिल्कुल उल्टे तौर पर उसका संगठन हुआ था। भारतीय समाज जातिगत विशेषता रखकर व्यक्तिगत धर्म-साधना का पक्षपाती था, इस्लाम जातिगत विशेषता का लोप करके समूहगत धर्म-साधना का प्रचारक था। एक का केन्द्र बिन्दु चारित्र्य था, दूसरे का धर्म-मत। भारतीय समाज में यह स्वीकृत तथ्य था कि विश्वास चाहे जो भी हो, चारित्र्य शुद्ध है तो व्यक्ति श्रेष्ठ हो जाता है। फिर चाहे वह किसी जाति का भी क्यों न हो। मुसलमानी समाज का विश्वास था कि इस्लाम ने, जो धर्म-मत प्रचार किया है उसको स्वीकार कर लेने वाला ही अनन्त स्वर्ग का अधिकारी है। जो इस धर्म-मत को नहीं मानता वह अनन्त नरक में जाने को बाध्य है।

धर्माचार का पालन

ऐसा जान पड़ता है पहली बार भारतीय मनीषियों को एक संघबद्ध धर्माचार के पालन की जरूरत महसूस हुई। इस्लाम के आने से पहले इस विशाल

जनसमूह का कोई एक नाम तक नहीं था। अब इसका नाम 'हिन्दू' पड़ा। हिन्दू अर्थात् भारतीय, अर्थात् गैर-इस्लामी मत। स्पष्ट ही गैर-इस्लामी मत में कई तरह के मत थे। कुछ ब्रह्मवादी थे, कुछ कर्मकाण्डी थे, कुछ शैव थे, कुछ वैष्णव थे, कुछ शाक्त थे, कुछ स्मार्त थे तथा और भी न जाने क्या-क्या थे। हजारों योजनों तक विस्तृत और हजारों वर्षों में परिव्याप्त इस जनसमूह के विचारों और परम्परा प्राप्त मतों का एक विशाल जंगल खड़ा था। स्मृति, पुराण, लोकाचार और कुलाचार की विशाल वनस्थली में से रास्ता निकाल लेना बड़ा ही दुष्कर कार्य था। स्मार्त पंडितों ने इसी दुष्कर व्यापार को शिरोधार्य किया। सारे देश में शास्त्रीय वचनों की छानबीन होने लगी। उद्देश्य था कि इस प्रकार का सर्वसम्मत् मत निकाल लिया जा सके, श्राद्ध-विवाह की एक ही रीति-नीति प्रचलित हो सके, उत्सन-समारोह का एक ही विधान तैयार हो सके। भारतीय मनीषा का शास्त्रों को आधार मानकर अपनी सबसे बड़ी समस्या के समाधान का यह सबसे बड़ा प्रयत्न था। हेमाद्रि से लेकर कमलाकर और रघुनंदन तक बहुतेरे पंडितों ने बहुत परिश्रम के बाद जो कुछ निर्णय किया वह यद्यपि सर्ववादिसम्मत् नहीं हुआ, परन्तु निःसन्देह स्तूपीभूत शास्त्र वाक्यों की छानबीन से एक बहुत कुछ मिलता-जुलता आचार-प्रवण धर्म-मत स्थिर किया जा सका। निबन्ध ग्रन्थों की यह एक बहुत बड़ी देन है। जिस बात को आजकल 'हिन्दू-सोलिडैरिटी' कहते हैं, उसका प्रथम भित्ति-स्थापन इन निबन्ध ग्रन्थों के द्वारा ही हुआ था। पर समस्या का समाधान इससे नहीं हुआ।

कबीर की मजार, मगहर

इस प्रयत्न की सबसे बड़ी कमजोरी इसकी आचार-प्रवणता ही थी। जो नया धर्म-मत भारतीय जन समाज को संक्षुब्ध कर रहा था वह इस आचार को कोई महत्त्व ही नहीं देता था। उसका संगठन बिल्कुल उल्टे किनारे से हुआ था। उसके मूल में ही सबको स्वीकार करने का सिद्धांत काम कर रहा था। समस्त शास्त्रीय वाक्यों को नतशिर से स्वीकार करके ही यह असाध्य साधन किया गया था। पर जिस प्रतिद्वन्द्वी से काम पड़ा था वह बहुत वर्जनाग्रही था, अर्थात् वह निर्दयतापूर्व अन्यान्य मतों को तहस-नहस करने की दीक्षा ले चुका था और धार्मिक वर्जनशीलता ही उसका मुख्य अस्त्र था। यद्यपि वह समाज धार्मिक रूप में वर्जनशील था, पर सामाजिक रूप में ग्रहणशील था। जबकि हिन्दू समाज धार्मिक साधनों को स्वीकार कर सकता था। पर किसी व्यक्ति विशेष को

धर्म-मत में ग्रहण करने का पक्षपाती नहीं था। उधर मुसलमानी समाज व्यक्ति को अपने धर्म-मत शामिल कर लेने को परम कर्त्तव्य समझता था। परन्तु किसी विशेष धर्म साधना को अपने किसी व्यक्ति के लिए एकदम वर्जनीय मानता था। निबन्ध ग्रन्थों ने हिन्दू को और भी अधिक हिन्दू बना दिया, पर मुसलमानों को आत्मसात् करने का कोई रास्ता नहीं बताया।

इस प्रकार मुसलमानों के आगमन के साथ ही साथ हिन्दू धर्म प्रधानत: आचार-प्रवण हो गया। तीर्थ, व्रत, उपवास और होमाचार की परम्परा ही उसका केन्द्र बिन्दु हो गई। इस समय पूर्व और उत्तर में सबसे प्रबल सम्प्रदाय नाथपंथी योगियों का था। हमने पहले ही देखा है कि लोग शास्त्रीय स्मार्त मत को भी नहीं मानते थे और प्रस्थानत्रयी (अर्थात् 'उपनिषद', 'ब्रह्मसूत्र', और 'गीता') पर आधारित किसी दार्शनिक मतवाद के भी कायल नहीं थे। पर जनता का ध्यान ये आकृष्ट कर सके थे। विविध सिद्धियों के द्वारा वे काफी सम्मान और संभ्रम के पात्र बन गए थे। ये गुणातीत शिव या निर्गुण तत्त्व के उपासक थे। साधनाओं के द्वारा, जिन्हें काया-साधन कहते थे, लोग परम-तत्त्व को पाने के प्रयासी थे। इनमें जो सिद्ध, साधक और अवधूत थे वे घरबारी नहीं होते थे पर उनके शिष्यों में बहुत-से आश्रम भ्रष्ट गृहस्थ थे, जो कि योगी जाति का रूप धारण कर चुके थे। हिन्दू धर्म इन आश्रमभ्रष्ट गृहस्थों का सम्मान तो करता ही न था, उल्टे उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से ही देखता था। ये आश्रमभ्रष्ट गृहस्थ न तो हिन्दू थे - क्योंकि वह हिन्दुओं के किसी मत या आचार के कघयल न थे - और न ही मुसलमान - क्योंकि इन्होंने इस्लाम धर्म-मत को स्वीकार नहीं किया था। कुछ काल के इस्लामी संसर्ग के बाद ये लोग धीरे-धीरे मुसलमानी धर्म - मत की ओर झुकने लगे, पर इनके संस्कार बहुत दिनों तक बने रहे। जब वे इसी प्रक्रिया में से गुजर रहे थे उसी समय कबीर का आविर्भाव हुआ था।

धार्मिक आन्दोलन

Blockquote-open-gif कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया-बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। Blockquote&close-gif

हजारी प्रसाद द्विवेदी

यहाँ दो और प्रधान धार्मिक आंदोलनों की चर्चा कर लेनी चाहिए। पहली धारा पश्चिम से आई। यह सूफी लोगों की साधना थी। मजहबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्मस्थान पर चोट नहीं कर पाए थे। वे केवल उसके बाहरी शरीर को विक्षुब्ध कर सकते थे। पर सूफी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनके उदारतापूर्ण प्रेम मार्ग ने भारतीय जनता का चित्त जीतना आरम्भ कर दिया। फिर भी ये लोग आचार प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उसका सामंजस्य आचार प्रधान हिन्दू धर्म के साथ नहीं हो सका। यहाँ पर यह बात स्मरण रखने की है कि न तो सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम-तत्त्व की साधना ही उस विपुल वैराग्य के भार को वहन कर सकी। जो बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित था। देश में पहली बार वर्णाश्रम-व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्व विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। अब तक वर्णाश्रम-व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं था। आचार भ्रष्ट व्यक्ति समाज से अलग कर दिए जाते थे और वे एक नई जाति की रचना कर लेते थे। इस प्रकार सैंकड़ों जातियाँ और उप-जातियाँ सृष्ट होते रहने पर भी वर्णाश्रम-व्यवस्था एक प्रकार से चलती ही जा रही थी। अब सामने एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी समाज था जो कि प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अंगीकार करने को बद्धपरिकर था। उसकी एकमात्र शर्त यह थी कि वह उसके विशेष प्रकार के धर्म-मत को स्वीकार कर ले। समाज से दंड पानेवाला बहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय नहीं था। इच्छा करते ही वह एक सुसंगठित समाज का सहारा पा सकता था। ऐसे समय में दक्षिण से वेदांत भावित भक्ति का आगमन हुआ, जो कि विशाल भारतीय महाद्वीप के इस छोर से उस छोर तक फैल गया। डॉ. ग्रियर्सन ने कहा था-

'बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त (धार्मिक मतों के) अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। यह भक्ति का आंदोलन है। '

इसने दो रूपों में आत्म-प्रकाश किया। पौराणिक अवतारों को केन्द्र करके सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण परब्रह्म, जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके प्रेम-भक्ति की साधना के रूप में। पहली साधना ने हिन्दू जाति की बाह्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने शास्त्र का सहारा लिया,

दूसरी ने अनुभव का, एक ने श्रृद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को, एक ने सगुण भगवान को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर प्रेम दोनों ही का मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था, केवल बाह्याचार दोनों को सम्मत नहीं थे, आंतरिक प्रेम निवेदन दोनों को अभीष्ट था, अहैतुक भक्ति दोनों की काम्य थी, बिना शर्त के भगवान के प्रति आत्म-समर्पण दोनों के प्रिय साधन थे। इन बातों में दोनों ही एक थे। सबसे बड़ा अंतर इनके लीला सम्बन्धी विचारों में था। दोनों ही भगवान की प्रेम लीला में विश्वास करते थे। दोनों का ही अनुभव था कि लीला के लिए इस जागतिक प्रपंच को सम्भाले हुए हैं। पर प्रधान भय यह था कि सगुण भाव से भजन करने वाले भक्त अपने आप में रमे हुए भगवान को ही परम काम्य मानते थे।

9

बीजक

'बीजक' कबीर वाणी का प्रामाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। यह कबीर द्वारा ही लिखा गया है, इसमें सन्देह है। कबीर ने जिस भाषा और शैली में अपनी वाणी कही है, वह उनके साहित्यिक एवं शास्त्रीय निष्ठा का प्रमाण नहीं देती। कबीर की साखी यह कहती है- कबीर संसा दूर करु, पुस्तक देई बहाय।

और जनश्रुति यह कहती है कि मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। तब उन्होंने बीजक ग्रन्थ लिखा होगा, इसमें बहुत सन्देह होता है।

मौखिक उपदेश

कबीर ने तो अपने सिद्धान्त और उपदेश मौखिक रूप में ही दिये। उन्होंने सदैव 'कहै कबीर सुनो भाई सन्तों' ही कहा, 'लिखै कबीर पढ़ो भाई सन्तों' जैसी पंक्ति कभी नहीं लिखी, अतः जो वाणी उन्होंने कही, वह मौखिक रूप में ही प्रचारित हुई। यह बात अवश्य कही जा सकती है कि जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे उनके शिष्यों ने लिखा और कबीर के नाम से प्रचारित किया। यह भी सम्भव है कि शिष्यों की बहुत-सी वाणी कबीर के नाम से ही प्रचारित हुई हो। यही कारण है कि आज कबीर के नाम से लगभग 61 ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें से काफी संख्या ऐसे ग्रन्थों की है, जो कबीर के बाद लिखे गये और जिनमें उन सिद्धान्तों की चर्चा है, जिनमें बाह्याचार और कर्मकाण्ड का निरूपण विशेष रूप

से हुआ। कबीर ने बाह्याचार और कर्मकाण्ड की सदैव ही निन्दा की, अतः वे ग्रन्थ कबीर द्वारा निर्मित नहीं हो सकते।

बीजक मूल ग्रंथ

कबीरपन्थियों तथा सामान्य पाठकों में 'बीजक' कबीर साहब के सिद्धान्तों का मूल ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि चोरी से उनका एक भक्त भगवानदास 'बीजक' की प्रति को ले भागा। कहते हैं बीजक लेकर भागने के कारण ही यह भगवानदास 'भग्गू' के नाम से निन्दित हुआ। 'बीजक' की टीका लिखने वाले 'विश्वनाथ सिंह जू देव' ने कबीर साहब के द्वारा कही गयी बीजक के सम्बन्ध में कुछ चौपाइयों का निर्देश किया है–

'भग्गूदास की खबरि जनाई। ले चरनामृत साधु पियाई। ।
कोऊ आप कह कालिंजर गयऊ। बीजक ग्रन्थ चोराइ ले गयऊ। ।
सतगुरु कह वह निगुरा पन्थी। काह भयौ लै बीजक ग्रन्थी। ।
चोरी करि वै चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई।
बीजमूल हम प्रगट चिह्नाई। बीज न चीह्नो दुर्मीत लाई। । '

कबीरपन्थी 'महात्मा पूरन साहेब' ने कबीर साहब के मुख्य ग्रन्थ मूल बीजक की जो टीका लिखी है, उसके अनुसार 'बीजक' के निम्नलिखित ग्यारह अंगों का निर्देश और विस्तार निम्न प्रकार से दिया है–

रमैनी – 84,
शब्द – 115,
ज्ञान चौंतीसा –34,
विप्रमतीसी – 1,
कहरा – 12,
वसन्त – 12,
चाचर – 2,
बेलि – 2,
बिरहुली – 1,
हिंडोला – 3,
साखी – 353।

इस भाँति बीजक में छन्दों की कुल संख्या 619 है।

'बीजक' शब्द तांत्रिक उपासना से सम्बद्ध ज्ञात होता है। बौद्ध तंत्र में जिन सूत्रों से रहस्यमय तत्त्व की उपलब्धि होती है, उन्हें 'बीज सूत्र' या 'बीजाक्षर' का नाम दिया गया। इसी 'बीजाक्षर' में मन्त्रों की सृष्टि मानी गयी। इस भाँति बीजाक्षर से शब्द तत्त्व का भी बोध हुआ। बौद्ध धर्म की वज्रयानी परम्परा से कालान्तर में सन्त सम्प्रदाय के स्रोत मिलते हैं। इस सन्त सम्प्रदाय में शब्द का बहुत महत्त्व है। सन्त सम्प्रदाय के काव्य में 'शब्द' और 'साखी' का विशिष्ट अर्थ और महत्त्व समझा जाता है। इसी 'बीजक' ग्रन्थ में 'रमैनी' (37) में 'बीजक' के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है–

'एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई। ।
तीसर सयान सयान दिखाई। चौथे सयान तहाँ ले जाई। ।
पचये सयान न जाने कोई। छठये मा सब गैल बिगोई। ।
सतयाँ सयान जो जानहु भाई। लोक वेद मों देउ देखाई। । '
'बीजक वित्त बतावै। जो वित्त गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीवको। बुझे बिरला कोय। ' – साखी

उपर्युक्त उद्धरण में 'बीजक' का सम्बन्ध 'शब्द' से ही जोड़ा गया है। सयान की मीमांसा निम्न प्रकार से समझी जा सकती है–

एक सयान–ब्रह्म,
दूसर सयान–माया,
तीसर सयान–त्रिगुण–(भक्ति, ज्ञान और योग),
चौथे सयान–चारों वेद,
पंचयें सयान– पाँचों तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी),
छठयें सयान–मन के दोष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर),
सतयाँ सयान–शब्द।

इस भाँति 'बीजक' वास्तविक तत्त्व का बोधक है। यह तत्त्व संसार में गुप्त रहता है। 'बीजक' के द्वारा ही ब्रह्म के वास्तविक तत्त्व (शब्द) का बोध होता है, जिससे समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है।

बीजक का मुद्रण

कबीर की वाणियों में 'बीजक' का मुद्रण सबसे पहले हुआ। इसका कारण है कि कबीरपन्थी 'बीजक' को सर्वाधिक प्रामाणिक तथा आदरणीय ग्रन्थ मानते हैं। रीवा नरेश 'श्री विश्वनाथ सिंह' की टीका के साथ 'बीजक' 1872 ई. से

पहले मुद्रित हुआ था। पादरी प्रेमचन्द, पूर्णदास, पादरी अहमदशाह, महर्षि शिवव्रत लाल, विचारदास, साधु लखन दास, हनुमान दास, भगवान साहब, गोस्वामी साहब, महाराज राघवदास, हंसदास आदि अनेक विद्वानों तथा सन्तों ने 'बीजक' का मूलपाठ टीका सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराया है।

अनुवाद

अहमदशाह ने 'बीजक ऑफ कबीर' का अंग्रेजी अनुवाद किया है।

हनुमान दास ने संस्कृत में 'बीजक' की व्याख्या प्रस्तुत की है। इसका प्रकाशन फतुहा पटना से हुआ है।

कबीर की सम्पूर्ण ग्रन्थावली का सम्पादन श्यामसुन्दर दास ने किया है। इसका प्रकाशन 1928 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा से हुआ।

कबीर रचनावली का सम्पादन अयोध्यासिंह उपाध्याय ने किया है। इनके अलावा पदों तथा साखियों के अलग-अलग संकलन प्रकाशित हैं। ज़्यादातर संकलन कबीरपन्थ से जुड़े सन्तों ने ही किया है।

'आचार्य क्षितिमोहन सेन' ने कबीर शीर्षक से चार भागों में कबीर की रचनाओं का संकलन किया है।

डॉक्टर पारसनाथ तिवारी ने सैंकड़ों ग्रन्थों की छानबीन करके ग्रन्थों को कबीर कृत न होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। तिवारी जी ने दादू पंथी शाखा की पाँच प्रतियों, निरंजनी शाखा की एक प्रति, गुरु ग्रन्थ साहब, दो बीजकों, दो शब्दावलियों, तीन साखी ग्रन्थों, एक सर्वंगी, एक गुणगजनामा तथा आचार्य सेन की रचनाओं की तुलना करके कबीर ग्रन्थावली का मूल पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

भाषा

निरंजनी दोनों शाखाओं से सम्बन्धित प्रतियों पर राजस्थानी भाषा का व्यापक प्रभाव है। इनकी निरन्तर प्रतिलिपियाँ होती रहीं और भाषा का रूपान्तरण होता रहा। साखियों पर राजस्थानी का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। पदों (सबद) तथा रमैनियों पर यह प्रभाव कम है। डॉक्टर पारसनाथ तिवारी ने इस भेद का कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया। वास्तव में साखियों में जो छन्द अपनाया गया है, वह अपभ्रंश का दूहा छन्द है। अपभ्रंश भाषा का केन्द्र राजस्थान, गुजरात तथा सिन्ध रहा है। अपभ्रंश का प्रचार-प्रसार लगभग सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में हुआ।

उत्तरवर्ती अपभ्रंश में पूर्वी क्षेत्र के कवियों ने रचनाएँ की हैं। सरहपा और कण्हपा के 'दोहा कोश' की भाषा अवहट्ठ है। यह भाषा राजस्थान से आभीरों के साथ पूर्वी भारत में काव्य भाषा के रूप में पहुँची थी। विद्यापति ने भी अपनी दो रचनाओं 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' में इसी भाषा को माध्यम बनाया था। सरहपा से लेकर विद्यापति तक भाषा के दोहरे रूपों का प्रयोग परिलक्षित होता है। इन कवियों ने गीतों की रचना पूर्वी भाषा में की है और दोहों तथा प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ पारम्परिक काव्यभाषा अवहट्ठ में की हैं। कबीर का भाषिक आदर्श इसी परम्परा के अनुरूप है। इसीलिए उनकी भाषा में राजस्थानी तत्त्वों की उपलब्धता आश्चर्यजनक नहीं है।

बीजक कबीर का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ

बीजक के अतिरिक्त कबीर के नाम से प्रचलित अन्य वाणियाँ कबीर के द्वारा ही कही गयी हैं, क्योंकि उनमें प्रक्षेपों की भरमार है। परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि 120 वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बीजक के अतिरिक्त और कुछ कहा ही नहीं है। बीजक के अतिरिक्त भी उनकी बहुत सारी वाणियाँ हैं, परन्तु उनकी समस्त वाणियों में बीजक सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रसिद्ध वैष्णव सन्त नाभादास जी महाराज ने कबीर की प्रशंसा करते हुए, जो छप्पय कहा है, उसकी एक पंक्ति है- 'हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी। '

रमैनी, शब्द और साखी का यह क्रम किसी और 'कबीर वाणी' में नहीं, अपितु 'बीजक' में ही है। बीजक ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें कबीर का क्रान्तिकारी स्वरूप पूर्ण रूप उभरा है।

बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व

बीजक में कबीर ने अपने नामवाची कबीर, कबिरा, कबीरा, कबिरन, कबीरन आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया, स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ टीकाकारों के ख्याल से ये शब्द एकार्थबोधक हैं और कबीर ने इन सबका प्रयोग अपने लिए ही किया है, केवल छन्द प्रवाह बनाये रखने के लिए मात्राओं में हेर-फेर है। कुछ अन्य टीकाकारों के ख्याल से उपरोक्त सभी शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ बोधक हैं। परन्तु दोनों दृष्टि एकांगी हैं। उपर्युक्त सभी शब्द हर जगह कबीर के नाम एवं व्यक्तित्त्व से भिन्न

अर्थ रखते हैं, ऐसी बात नहीं है, परन्तु हर जगह इन सबका एक ही अर्थ किया जाए तो पूरे अर्थ की संगति ही नहीं बैठ सकती। उदाहरणार्थ–

भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास, कबिरन ओट राम की पकरी,
अन्त चले पछिताई, कबिरन भक्ति बिगारिया,
कंकर पत्थर धोय, झूठा खसम कबीरन जाना,
कबिरा बनौरी गावै, तथा तामहँ भ्रमि–भ्रमि रहल कबीरा।

बीजक हमें बरबस ही सूत्र ग्रन्थों की याद दिलाता है, जिसमें छोटा–सा वाक्य बहुत बड़े अर्थगांभीर्य एवं भाव को छिपाये रहता है। बीजक में रूपक, प्रतीक, अन्योक्तिकथन, उलटवांसी शैली, कहीं पूर्वपक्ष की मान्यताओं का प्रदर्शन कराने के लिए कहे गये वचन आदि होने से हर सिद्धान्त के मानने को अपने दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना के लिए जगह मिल जाती है।

बीजक की अनेक टीकाएँ

देशी–विदेशी अनेक विद्वानों द्वारा बीजक को प्रामाणिक कबीर साहित्य मानकर उसकी अब तक दर्जनों टीकाएँ हो चुकी हैं तथा आज भी होती जा रही हैं। बीजक की अब तक हुई अनेक टीकाएँ ऐसी हैं, जिनकी भाषा–शैली पुरानी होने से वह आज सबकी समझ में ठीक से नहीं आती। कुछ में तो अर्थ अत्यन्त अस्पष्ट एवं भ्रामक हो गया है। और कुछ टीकाएँ तो ऐसी हुई हैं, जिनमें सारे पाखण्ड एवं कुरीतियों को जलाकर राख कर देने वाला कबीर का क्रान्तिकारी विदग्धात्मक रूप ही ओझल हो गया है और वहाँ पर कबीर को परम्परापोषित भक्तकवि बनाकर रख दिया गया है तथा उन्हें किसी अदृश्य, अज्ञात शक्ति के आगे गिड़गिड़ाने वाला भावुक भक्त बना डाला गया है।

10

कबीर की आलोचना

कबीर क्या थे? और अब उनकी क्या-क्या छवियाँ हैं? यह मालूम करना बहुत ही मुश्किल है। क्योंकि अतीत से वर्तमान तक कबीर की छवि में बहुत परिवर्तन आया है और यह परिवर्तन पाठकों एवं आलोचकों की अपनी दृष्टि से निर्मित हुआ है। कबीर का समय राजदरबार का था लेकिन कबीर का संबंध कभी राजदरबार से नहीं मिलता था। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कबीर जनता के कवि थे। कबीर कोई कलम उठाकर लिखने वाले कवि नहीं थे, बल्कि जनता के बीच गाने वाले, उपदेशक कवि थे। कबीर मर्यादा के पिछलग्गू नहीं थे, सीमाओं में कतई विश्वास नहीं करते थे। कबीर एक लीक पर चलने वाले नहीं थे, कबीर शेर की तरह गर्जना करते हुए समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता को दूर करने वाले सुधरक थे। अगर कबीर के विषय में यह कहा-

लीक-लीक पर सब चले, लीकंहि चले कपूत।
ये तीनों बेलीक है, शायर, सिंह, सपूत। ।

जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। कबीर को मानने वाले दो प्रकार के लोग हैं- पहला- कबीरपंथी (कबीर के पदों को गायन कर, परम्पराओं से मान्यताओं को मानने वाले), दूसरा- हिंदी साहित्य के आलोचक और सुधी जन। कबीर की हिंदी आलोचना में विविध छवियाँ हैं, जैसे कि संत, महात्मा, निर्गुण पंथ के अग्रदूत, ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि, भक्त कवि, तात्विक एवं रहस्यवादी साधाक, समाज सुधारक एवं चिन्तक, प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी कवि, मानवता

के पुजारी, पाखण्डों के विरोधी। कुछ साहित्यकार एवं आलोचक कबीर की छवि को वर्गीय चेतना के आधर पर देखते हैं, जैसे- वैष्णव कबीर, बनिया कबीर, दलित व निम्नवर्गीय चेतना के कबीर।

कबीर की विविध छवि को हम दो ढंग से देख सकते हैं, पहला- कबीर की स्वरचित पदों से और दूसरा- हिंदी आलोचकों के आपसी बौद्धिक टकराहट में। हिंदी आलोचक कबीर को किस रूप में देखते हैं। कबीर की पहली छवि, दूसरी की अपेक्षा ज्यादा ऊर्जावान, सजीला और प्रमाणिक लगती है। कबीर अनुभव के ज्ञान को महत्त्व देते है, शास्त्र के बजाए लोक को तवज्जों देते है, इसलिए उन्होंने कहा- 'तू कहता कागद लिखी, मैं कहता आँखन देखी। ' कबीर समाज में व्याप्त धार्मिक कट्टरता, ब्राह्मण्डरों, भेदभाव, वर्ण व्यवस्था का विरोध करते है और मानव को उस परमसत्ता का अंश मानते है, उनका मानना है कि परमसत्ता के सामने कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। सभी जाति, धर्म, वर्ण के लोग एक समान होते हैं।

''एक बूँद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक ज्योति से सब उपजा, को बाभन, को सूदा। । ''

समाज में जाति व्यवस्था एक कुरीति के रूप में फैली हुई है, यह एक प्रकार का रोग है, जो सामाजिक चेतना को कमजोर करता है। जाति व्यवस्था ही शोषण का एक प्रमुख कारण है इसलिए कबीर इसका विरोध करते हैं-

''तूम कैसे ब्राह्मण पांडे, हम कैसे सूद। ''

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आज भी छूआछुत की बीमारी है, समाज के उच्चवर्ण के लोग नीचले, निर्धन लोगों से दूरी बनाए रखते हैं। यह छुआछुत या अश्पृश्यता ने मानव और मानव के बीच भेदभाव पैदा किया है। कबीर ने मानव और मानवीयता पर जोर देते हुए आज से 600 साल पहले ही इस बुराई की आलोचना की थी। कबीर ने हिंदू की हिंदुई पर कठोर प्रहार किया था क्योंकि हिंदू लोग मुस्लिम और दलित से दूरी बनाए रखे थे।

''हिन्दु अपनी करे बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवें, यह देखों हिन्दुआई। । ''

कबीर तत्कालीन समय के सामाजिक अगुवा थे, सामाजिक मुखिया थे, इन्होंने समाज में फैली हुए सभी बुराईयाँ चाहे वे किसी भी धर्म की हो, सभी की आलोचना करते हैं और उन बुराई को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध भी थे।

कबीर तार्किकता, वैज्ञानिक सोच, सामंजस्य की बात करते हैं, रूढ़ियाँ, अंध्विश्वास, बाह्याडम्बर, मूर्तिपूजा आदि का खंडन करते हैं।

''मूड, मुंडाए हरि मिलै, सब जन लेहु मुड़ाए।
बार-बार के मुड़ते, भेड़-बैकुण्ड न जाए। । ''
''कॉकर-पॉथर जोरि के मस्जिद् लाई चुनाए।
ता चहि मुल्ला बाग दे, का बहरा हुआ खुदाए। । ''

कबीर के पदों में एक बहुत बड़ी विशेषता है- तार्किकता, आत्म-विश्वास और प्रामाणिकता के साथ विरोधों (धार्मिक नौकरशाही) का खण्डन। धार्मिक नौकरशाही का तात्पर्य है कि कबीर के समकालीन धार्मिक मुखिया-पण्डित, मुल्ला, मौलवी आदि जो धार्मिक अनीतियों से लोगों से लोगों के बीच में भेदभाव पैदा करते, अपने को ही श्रेष्ठ मानने के पक्षधर थे। कबीर ऐसे धार्मिक मुखिया की अपने स्व-रचित पदों में खिंचाई करते हैं। कबीर के इन सभी पदों उपदेशपरक, नीतिपरक, गुरु की महत्ता, आत्मा-परमात्मा का संबंध का भारतीय भजन-गायन और कबीर पंथी गायनों में मिलता है।

कबीर की दूसरी छवि अर्थात् आलोचकों एवं साहित्यकारों के बीच में स्वीकृति, की बात करें तो हम देखते हैं कि प्रारम्भिक साहित्येतिहास लेखन में उनकी पहचान नहीं बन पाती क्योंकि जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधु, कबीर की विराट चेतना को पहचान नहीं सके, जबकि बाद के साहित्यकारों और आलोचकों ने कबीर की विराट सत्ता को स्वीकार किया और स्थापित भी किया। प्रसिद्ध साहित्यकार अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 1916 में 'कबीर रचनावली' के नाम से पुस्तक को लिखा तो साहित्यकार एवं भाषाविद् डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' के नाम से कबीर के पदों का संकलन किया। कबीर को समझने के लिए डॉ. श्यामसुंदर दास की 'कबीर ग्रंथावली' की 40 पेज की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर की धर्म, साधना, प्रेम, भक्ति स्वरूप की सराहना करते हैं क्योंकि कबीर से पहले नाथपंथियों की एक ऐसी साधना विकसित हो रही थी, जिसे हठयोग कहते हैं, जिसमें शरीर को विभिन्न प्रकार से पीड़ा दी जाती है, तब साधना की जाती है। कबीर ने इस परंपरा अर्थात् हठयोग को तोड़ा और उन्होंने प्रेम, भक्ति, सहज धार्मिक भावना पर जोर दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने भाव के स्तर पर कबीर की प्रशंसा करते हैं लेकिन भाषा-शैली के स्तर पर कबीर की आलोचना करते हैं। हिंदी साहित्य के बड़े

आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कबीर में वैष्णवों की अहिंसा, सूफियों का प्रेम, हठयोगियों का साधनात्मक-रहस्यवाद को खोजते हैं।

आचार्य शुक्ल कबीर की सीमा भी बताते है कि कबीर की बड़ी-बड़ी गर्वोक्तियाँ और साधुक्कड़ी भाषा शिक्षित जनता को ज्यादा प्रभावित नहीं कर सकती। शुक्ल जी का मानना था कि शिक्षित जनता के लिए कबीर के पंथ में कोई नयी बात नहीं थी, न ही आकर्षक था- ''संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृतवाणी का, वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता, जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता, परंतु निम्नश्रेणी और अशिक्षित जनता पर इन संत महात्माओं का बड़ा भारी उपकार उच्च विषयों का आभास देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्म-गौरव का भाव उत्पन्न करके, इन्होंने इसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। ''

आचार्य शुक्ल जी ने बहुत कुछ वैसा ही कहा है कि जैसा उनके पहले डॉ. श्यामसुंदर दास, कबीर के बारे में कह चुके थे। डॉ. श्यामसुंदर दास ने कबीर के आविर्भाव को नया नहीं माना बल्कि कहा कि कबीर के उद्‌भव के समय परिस्थिति ही ऐसी थी। जिस सामान्य भक्तिमार्ग का नाम डॉ. श्यामसुंदर दास ने लिया है, वही नाम आचार्य शुक्ल ने भी माना है। आचार्य शुक्ल कबीर का थोड़ा-सा महत्त्व स्वीकार करते हैं- ''मुसलमानों के आगमन से हिन्दू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा, पद दलित शूद्रों की दृष्टि में उन्मेष हो गया। ''

जहाँ शुक्ल जी, कबीर की भाषा को शिक्षित जनता की भाषा नहीं मानते है और कबीर की भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहते हैं। वहीं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर की वाणी को डिक्टेटर के रूप में देखते हैं। यानि कबीर को, जो बात कहनी हैं या तो सीधे-सीधे व्यक्त कर देते हैं या नहीं बन पड़ता तो दरेरा देकर। आचार्य शुक्ल जी के लिए कबीर योगियों से प्रभावित और वैष्णव संस्कार के मिश्रण के रूप में है, तो वहीं द्विवेदी जी कबीर को पक्के प्रेमी के रूप में देखते हैं। द्विवेदी जी अपनी किताब 'हिंदी साहित्य: उद्‌भव और विकास' में कबीर के इस दोहे-

''कबिर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर माँहि॥ ''

के माध्यम से कबीर के प्रेम को और प्रेम की प्रक्रिया को व्याख्यित करते है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नाथ-सिद्धों की रचनाओं को साम्प्रदायिक शिक्षा मानते हैं, जबकि इसके विपरीत हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ-सिद्धों की रचनाओं को

कविता और साहित्य की कोटि में बांधते हैं। यहाँ द्विवेदी जी, कबीर को नाथ-सिद्धों से विषय के स्तर पर ही नहीं छन्द, लय के स्तर पर भी प्रभावित मानते हैं।

आचार्य शुक्ल, कबीर के ज्ञानात्मक और योग-साधनात्मक-रहस्यवाद से बुनी कविता को अपने साहित्य परिधि में शामिल नहीं करते क्योंकि शुक्ल जी केवल भावनात्मक एवं अनुभूतिपरक रहस्यवाद को स्थान देते हैं। जबकि डॉ. श्यामसुंदर का मानना है कि कबीर के रहस्यवाणी से ज्ञान का प्रस्फुटन और मायावाणी से जीवन-जगत की निरर्थकता सिद्ध होती है। कबीर संसार के दु:ख को मायाकृत मानते हैं। जो व्यक्ति माया में लिपटा रहता है, उन्हें दु:ख का अनुभव नहीं हो पाता। दु:ख का ज्ञान उन्हीं को सकता है, जिन्होंने माया का अज्ञानावरण हटा दिया है- सुखिया सब संसार है, खावै अरू सोवै। , दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै। ।

द्विवेदी जी, कबीर के व्यक्तित्त्व को मस्तमौला मानते हैं। मस्तमौला रहने वाला साधक अतीत, वर्तमान और भविष्य की परवाह नहीं करता। वह दुनिया के माप-जोख से अपनी सफलता का हिसाब नहीं करता, कबीर मतवाले थे-

''हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहें आजाद या जग से, हम दुनिया से यारी क्या। । ''

डॉ. रामविलास शर्मा, भक्ति आन्दोलन के आधार की खोज करते हुए देश की केन्द्रीय राजसत्ता, एक जैसी मुद्रा का चलन, घोड़े की नाल जैसी आवश्यक आवश्यकता का बड़े स्तर पर उत्पादन, सौदागरी पूंजीवादी की विकसित होती स्थिति, इन सारे कारकों से निष्कर्ष निकालते हैं कि वह वर्ग जो भोजन और जीवन के लिए सामंतों और केवल सामंतों पर आधारित था, वह उत्पादन से जुड़कर खुद अपनी आजीविका कमाने लगा। इस संदर्भ में डॉ. शर्मा कबीर की छवि को धार्मिक एवं राजनीतिक सत्ता को चुनौती के रूप में देखते हैं- ''जो तू बाथन, मैं। काशी का जुलाहा। ''

आचार्य द्विवेदी ने लोक और शास्त्र के बीच भेद किया था। कबीर को लोकधर्मी श्रेणी में रखा था और लोकधर्मी का अर्थ रचनात्मकता से था। जबकि डॉ. नामवर सिंह जी ने द्विवेदी के लोक का अर्थ तंत्र-मंत्र, जादू-टोना में फंसी जनता से माना है। अगर लोक का अर्थ ऐसी फंसी जनता से है, जो अनपढ़, अशिक्षित है तो नामवर जी फिर आचार्य शुक्ल की कबीर के सन्दर्भ में धारणा को स्वीकार रहे हैं, जो कि द्विवेदी जी की मान्यता से अलग और उल्ट है। इसी

क्रम में डॉ. मैनेजर पांण्डेय का कबीर के लोक के सन्दर्भ में मत है- ''लोक में बहुत-सारी जनवादी और सामाजिक शक्तियाँ होती है, जिसका प्रतिफलन कबीर है। '' कबीर की छवि के विषय में गजानन माधव मुक्तिबोध का मानना है कि कबीर की छवि निम्नवर्गीय उस चेतना का प्रस्फुटन है। जिसे हिन्दुस्तान की मनीषा ने एक कदम नीचे झुककर अपने में मिला लिया।

पुरुषोत्तम अग्रवाल, कबीर को देशज आधुनिकता की कोख में जन्म लेने वाला मानते है। यूरोपीय देशों का मानना था कि आधुनिकता का उद्‌भव यूरोप से हुआ, और वहीं से अन्य देशों (पूर्वी देशों) में फैला। जबकि अग्रवाल जी व अन्य प्रसिद्ध इतिहासकारों का मानना है कि भारतीय आधुनिकता आयातित नहीं है बल्कि स्व-निर्मित है, जिसका परिणाम कबीर का समय है। अग्रवाल जी का कहना है कि 'सच्चाई यही है कि आधुनिकता का व्यापार से संबंध वस्तुतः है, बहुत गहरा। '' कबीर की कविता का प्रचार-प्रसार व्यापारियों द्वारा हुआ। अग्रवाल जी अपनी पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की, कबीर की कविता और उनका समय' में कबीर को मानवता के कवि माना है, और मार्टिन लूथर किंग (यूरोपीय आधुनिकता के अग्रदूत) के मानवीय मूल्य से अधिक कबीर में मानवीय मूल्य की खोज करते हैं। अग्रवाल जी, कबीर की कविता में ''नाथपंथ और इस्लाम का प्रभाव नहीं बल्कि सामाजिक धरातल पर समतापरक और साधना के धरातल पर रहस्यवादोन्मुख वैष्णवता का प्रभाव देखते है। ''

कबीर की आलोचना की कड़ी में डॉ. धर्मवीर का नाम बहुत चर्चित है क्योंकि डॉ. धर्मवीर ने एक नये तरीके से या दलित दृष्टि से कबीर को शिनाख्त की है। डॉ. धर्मवीर, आचार्य शुक्ल की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि ''वे जायसी की वहीं प्रशंसा करते हैं, जहाँ तक उन्हें कबीर की निन्दा करनी होती है। इसके बाद जब उनका जी चाहता है वे तुलसी के मुकाबले में जायसी को छोटा सिद्ध कर देते हैं। वे कबीर को, जायसी से पिटवाते हैं और जायसी को तुलसी से रूँदलवा देते हैं। '' द्विवेदी जी की जिस पुस्तक को कबीर के सन्दर्भ में ऐतिहासिक महत्त्वतता मिली थी, उस महत्त्वतता को डॉ. धर्मवीर अपने तरीके से बखिया उघाड़ते है। डॉ. धर्मवीर का मानना है कि द्विवेदी जी कबीर को केवल व्यष्टिवादी और भक्त स्वीकार करते हैं और समाज सुधारक पंथ निर्माता नहीं मानते- ''यह बात सौ प्रतिशत सही है कि डॉ. द्विवेदी की रुचि इतनी कबीर को समझने की नहीं थी जितनी उन्हें कबीर को हिन्दू और वैष्णव सिद्ध करने की पड़ी थी। ''

जहाँ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, कबीर में समन्वयवादी तत्त्व की खोज करते हैं, तो वहीं डॉ. धर्मवीर इसे हिन्दुओं की अन्तिम चाल मानते हैं, जब कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों को फटकारा तो किसका समन्वय?

हिंदी आलोचना ने अपने विकास के साथ-साथ अपनी परंपरा और कविता का बार-बार मूल्यांकन किया है। चूंकि आलोचना, साहित्य को केन्द्र में रखती है। आलोचना को अपनी शक्तियाँ समकालीन समाज और राजनीति से प्राप्त होती है। जब तक हिन्दुस्तान में उच्चवर्गीय लोगों की प्रतिष्ठा थी, तब तक कबीर को अशिक्षितों, अर्द्धशिक्षितों का कार्य माना गया, परंतु धीरे-धीरे जैसे भारतीय राजनीति में किसान, मजदूरी हाशिए पर पड़े लोगों का प्रश्न केन्द्र में आया, वैसे-वैसे हिंदी साहित्य और आलोचना किसान, मजदूर, हाशिए पर लोगों को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त हुई। इसलिए बाद में, कबीर को भक्त, कवि से होते हुए दलित और बनिया कबीर के रूप में देखा जाने लगा। कबीर की महान चेतना में बाह्य और आन्तरिक अनेक छवियाँ अन्तर्निहित है।

11

कबीर साहित्य आलोचना

'कबीर' के प्रकाशन-काल (1942) तक हिंदी में न तो कबीर की साहित्यिक प्रतिष्ठा थी और न कोई स्वतंत्र आलोचना पुस्तक ही। 'प्रिय प्रवास' के यशस्वी कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने इस शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य में 'कबीर वचनावली' (1916) नाम से कबीर के वचनों का एक संक्षिप्त संकलन अच्छी-खासी भूमिका के साथ संपादित किया था और उसने कबीर की ओर साहित्य-प्रेमियों का ध्यान भी आकृष्ट किया, किंतु वह पुस्तक साहित्य में कबीर को प्रतिष्ठित करने में समर्थ न हो सकी। तीसरे दशक के अंत में बाबू श्यामसुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' (1928) नाम से कबीर की समस्त उपलब्ध रचनाओं का पहली बार संपादन करके निःसंदेह बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने इस ग्रंथ के आरंभ में अपने शिष्य और निर्गुण संप्रदाय के विशेषज्ञ डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल की मदद से एक लंबी प्रस्तावना जोड़कर कबीर के अध्ययन का पथ भी प्रशस्त किया। किंतु कबीर के प्रति यथोचित् सम्मान के बावजूद बाबू साहब भी उन्हें साहित्य में प्रतिष्ठित न कर पाए क्योंकि वे स्वयं ही कबीर के कवित्व के प्रति आश्वस्त न थे। 'ग्रंथावली' की भूमिका में उन्होंने लिखा है : कबीरदास जी स्वयं पढ़े-लिखे न थे। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह अपनी प्रतिभा तथा भावुकता के वशीभूत होकर कहा है। उनमें कवित्व उतना नहीं जितनी भक्ति और भावुकता थी। उनकी वाणी हृदय में चुभने वाली है। अब कबीर में चाहे जितनी प्रतिभा और भावुकता हो और उनकी वाणी भी

चाहे कितनी ही चुभने वाली क्यों न हो, लेकिन यदि वह 'अटपट' है और उसमें 'कवित्व' नहीं है तो साहित्य में उसे भला प्रतिष्ठा क्यों मिलने लगी?

किसी कवि को साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाने वाले थे आचार्य शुक्ल, लेकिन उन्होंने जहाँ तुलसीदास, सूरदास और जायसी पर स्वतंत्र रूप से विस्तृत समीक्षाएँ लिखीं, कबीर को इस योग्य नहीं समझा। उनके लिए कबीर का महत्त्व 'इतिहास' तक ही सीमित रहा, और 'इतिहास' में भी कबीर के प्रति सम्मान या सहानुभूति का भाव नहीं दिखता। उनकी दृष्टि में कबीर की भाषा तो पँचमेल है ही, विचार भी पँचमेल है, प्रतिभा उनमें जरूर बड़ी प्रखर थी और उनकी उक्तियों में कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार भी है, लेकिन कवित्व भी है - यह शुक्ल जी ने कहीं नहीं कहा है। 'इतिहास' के संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण (1940) में आगे चलकर शुक्ल जी ने इतना तो स्वीकार किया कि ''मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मम्ग्यौरव का भाव जगाया'' लेकिन उस बात से 'तुलसीदास' नामक पुस्तक (1923) में पहले की लिखी इस बात का परिहार नहीं होता कि कबीर आदि निर्गुणिया संत लोक-विरोधी थे।

इस प्रकार कबीर की वाणी पर सोचने-विचारने के लिए हिंदी से कोई उत्साहवर्द्धक प्रकाश मिलने की आशा न थी, जो मिल रही थी वह थी चुनौती! प्रकाश की कोई किरण यदि कहीं थी तो शांति निकेतन में। द्विवेदी जी के शांति निकेतन पहुँचने से काफी पहले रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा से आचार्य क्षितिमोहन सेन वाचिक परंपरा में प्राप्त कबीर के वचनों का संग्रह करके 1910 में चार भागों में उनका सटीक प्रकाशन करवा चुके थे। फिर रवींद्रनाथ ने स्वयं भी इनमें से सौ पद चुनकर अंग्रेजी में अनुवाद किया और एवलिन अंडरहिल की भूमिका के साथ लंदन से 'वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर' (1914) शीर्षक से प्रकाशित करवाया था। द्विवेदी जी के लिए ये दोनों ही सजीव प्रेरणाएँ सुलभ थीं। इसलिए इस अनुमान के लिए ठोस आधार है कि व्यापक क्षेत्र में इतनी ख्याति मिलने पर भी स्वयं अपने ही घर में कबीर को उपेक्षित पाकर द्विवेदी जी कबीर के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। अप्रासंगिक नहीं है कि द्विवेदी जी का 'कबीर' आचार्य क्षितिमोहन सेन को समर्पित है।

'कबीर' संबंधी अधिकांश मान्यताओं का बीजारोपण 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1910) में ही हो चुका था। 'भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का व्यक्तित्त्व, शीर्षक आठवें अध्याय में कबीर पर प्रायः वह सब संक्षेप में कह दिया

गया है जिसका पल्लवित रूप आगे चलकर 'कबीर' नामक ग्रंथ में मिलता है। कबीर की विद्रोही भावना स्वयं उनकी सामाजिक स्थिति की स्वाभाविक उपज थी, इसको रेखांकित करते हुए 'भूमिका' में द्विवेदी जी ने लिखा: '' वे दरिद्र और दलित थे इसलिए अंत तक वे इस श्रेणी के प्रति की गई उपेक्षा को भूल न सके। उनकी नस-नस में इस अकारण दंड के विरुद्ध विद्रोह का भाव भरा था। '' इसके बाद कबीर के कवित्व को प्रकाशित करते हुए यह कहा गया : ''कविता करना उनका लक्ष्य नहीं था, फिर भी उनकी उक्तियों में कवित्व की ऊँची से ऊँची चीज प्राप्य है। '' अंत में इस संक्षिप्त परिचय का उपसंहार इन वाक्यों से होता है– ''वे साधना के क्षेत्र में युग गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य स्त्रष्टा। संस्कृत के 'कूपजल' को छुड़ाकर उन्होंने भाषा के 'बहते नीर' में सरस्वती को स्नान कराया। उनकी भाषा में बहुत-सी बोलियों का मिश्रण है, क्योंकि भाषा उनका लक्ष्य नहीं था और अनजान में वे भाषा की सृष्टि कर रहे थे। '' कहने की आवश्यकता नहीं कि बाद की पीढ़ी ने इस भविष्यस्त्रष्टा को जल्दी ही पहचान लिया और इस प्रकार हिंदी साहित्य के परवर्ती विकास ने द्विवेदी जी की भविष्यवाणी की पुष्टि कर दी।

चूँकि कबीर का तिरस्कार मुख्यत: उनकी अटपटी भाषा और कवित्वहीनता को ही लेकर किया गया था, इसलिए 'कबीर' नामक ग्रंथ में द्विवेदी जी ने इस पक्ष की सविस्तार और सोदाहरण चर्चा की। अब तक कबीर की 'डाँट -फटकार' और 'खंडन-मंडन' की चर्चा तो बहुत हुई थी, किंतु उनके व्यंग्यों का कहीं जिक्र भी नहीं आया था। द्विवेदी जी ने पहली बार कबीर के व्यंग्यकार रूप को प्रस्तुत करते हुए घोषित किया : ''सच पूछा जाये तो आज तक हिंदी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यंत सादी किंतु अत्यंत तेज प्रकाशन भंगी अनन्य-साधारण है। हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करने वाले संतों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरल ढंग से चकनाचूर कर देने वाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है। व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो। ''

अन्यत्र भी ''भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी

रूप में भाषा से कहलवा लिया- बन गया तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है। ... इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। ''

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त स्थापनाओं में से प्रत्येक के लिए द्विवेदी जी ने कबीर की रचनाओं से ढेरों उदाहरण दिए हैं और सच पूछिए तो किसी भी अच्छी और विश्वसनीय आलोचना की तरह उनकी शक्ति ये उपयुक्त उद्धरण ही हैं।

दरअसल इन सभी विशेषताओं का मूल स्रोत है कबीर का असाधारण व्यक्तित्त्व और इस ग्रंथ से यह बात तुरंत स्पष्ट हो जाती है कि उस व्यक्तित्त्व का ठीक-ठीक उद्‌घाटन ही द्विवेदी जी का मुख्य लक्ष्य है। और इस कथन में विवाद की गुंजाइश नहीं है कि 'व्यक्तित्त्व विश्लेषण' शीर्षक बारहवाँ अध्याय 'कबीर' का मेरुदंड है। प्रसंगवश मुझे यह भी कहने में संकोच नहीं है कि कबीर का व्यक्तित्त्व-विश्लेषण हिंदी गद्य का गौरव है, जिसे और किसी बात के लिए न सही तो केवल हिंदी गद्य की शक्ति और संभावना का अनुभव करने के लिए भी समय-समय पर पढ़ा जा सकता है। सच तो यह है कि इससे कम प्राणवान और कम व्यंजक गद्य के द्वारा कबीर का व्यक्तित्त्व खड़ा हो ही नहीं सकता था, लेकिन यह एहसास भी द्विवेदी जी का गद्य पढ़ने के बाद ही होता है।

द्विवेदी जी से पहले कबीर का व्यक्तित्त्व हिंदी में एक ऐसे अक्खड़ फकीर का था, जो सबको डाँटा-फटकारा करता है और अपढ़ लोगों पर रोब गालिब करने के लिए झूठी गर्वोक्तियाँ करता है तथा कभी-कभी उलटबाँसियाँ बककर लोगों को चौंकाता रहता है। आचार्य शुक्ल ने कबीर को बहुत कुछ ऐसे ही 'झूठे' महात्मा के रूप में पेश किया है। बाबू श्यामसुंदर दास ने भी 'कबीर ग्रंथावली' की प्रस्तावना में एकाधिक बार कबीर के 'अक्खड़पन' का जिक्र किया है। द्विवेदी जी ने सबसे पहले कबीर के इस 'अक्खड़पन' के मिथक को ही तोड़ने का प्रयास किया है। इसके लिए कबीर को पूर्ववर्ती सिद्धों और योगियों से अलगाना जरूरी है।

ऊपर-ऊपर से देखने पर कबीर भी सिद्धों और योगियों के समान ही आक्रामक लगते हैं, लेकिन द्विवेदी जी की दृष्टि में, ''कबीर के पूर्ववर्ती सिद्ध और योगी लोगों की आक्रमणात्मक उक्तियों में एक प्रकार की हीन भावना की ग्रंथि या 'इनफीरियरिटी काम्प्लेक्स' पाया जाता है। वे मानो लोमड़ी के खट्टे अंगूरों की प्रतिध्वनि है, मानो चिलम न पा सकने वालों के आक्रोश हैं। उनमें तर्क है पर लापरवाही नहीं है, आक्रोश है पर मस्ती नहीं है, तीव्रता है पर मृदुता नहीं। (जबकि) कबीरदास का सर्वप्रधान गुण रस है, एक जीवन है। '' इसलिए ''अक्खड़ता कबीरदास का सर्वप्रधान गुण नहीं है। '' वस्तुत: ''कबीरदास ने यह अक्खड़ता योगियों से विरासत में पाई नहीं है। '' इस प्रकार वे अक्खड़ आदत से ही थे, स्वभाव से तो वे फक्कड़ ही थे। कारण, वे मूलत: भक्त थे, योगी नहीं। किंतु उनकी भक्ति भी विशेष प्रकार की थी। ''भक्ति के अतिरेक में उन्होंने कभी अपने को पतित नहीं समझा, क्योंकि उनके दैन्य में भी उनका आत्म-विश्वास साथ नहीं छोड़ देता था। उनका मन जिस प्रेम रूपी मदिरा से मतवाला बना हुआ था वह ज्ञान के गुड़ से तैयार की गई थी, इसलिए अंधश्रद्धा, भावुकता और हिस्टीरिक प्रेमोन्माद का उनमें एकांत अभाव था। ''

कबीर के इस अक्खड़-फक्कड़ व्यक्तित्त्व की विलक्षणता का समग्रत: निरूपण इन शब्दों में किया गया है– ''कबीर 'ज्ञान के हाथी' पर चढ़े हुए थे, पर 'सहज' का दुलीचा' डाले बिना नहीं, भक्ति के मंदिर में प्रविष्ट हुए थे, पर 'खाला का घर' समझकर नहीं, बाह्याचार का खंडन किया था, पर निरुद्देश्य आक्रमण की मंशा से नहीं, भगवद्विरह की आँच में तपे थे, पर आँखों में आँसू भरकर नहीं, राम को आग्रहपूर्वक पुकारा था, पर बालकोचित् मचलन के साथ नहीं-सर्वत्र उन्होंने एकसमता (बैलेंस) रखी थी। केवल कुछ थोड़े से विषयों में वे समता खो गए थे। अकारण सामाजिक उच्च-नीच मर्यादा के थोड़े से विषयों में वे समता खो गए थे। अकारण सामाजिक उच्च-नीच मर्यादा के समर्थकों को वे कभी क्षमा नहीं कर सके, भगवान के नाम पर पाखंड रचने वालों को उन्होंने कभी छूट ने नहीं दी, दूसरों को गुमराह बनाने वालों को उन्होंने कभी तरह देना उचित नहीं समझा। ऐसे अवसरों पर वे उग्र थे, कठोर थे और आक्रामक थे। पर गुमराह लोगों की गलती दिखाने में उन्हें एक तरह का रस मिलता था। व्यंग करने में उन्हें जैसे तृप्ति मिलती थी। ''

कुछ मिलाकर द्विवेदी जी के अविस्मरणीय शब्दों में : ''ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौलाय स्वभाव में फक्कड़, आदत से अक्खड़य भक्त के

सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंडय दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोरय जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। ''

कबीर की इस अभूतपूर्व और अभिनव कवि-प्रतिभा को ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि यह द्विवेदी जी के मनोवांछित विद्रोही कवि की अपनी कल्प-सृष्टि है, जिस पर बहुत हद तक चौथे दशक के फक्कड़पन की गहरी छाप है। इस दिशा में सोचने का ठोस आधार यह है कि द्विवेदी जी के 'हिंदी साहित्य : उसका उद्‌भव और विकास' (1952) से होकर गुजरने पर सहसा हम एक ऐसे दौर में आते हैं जहाँ एक साथ बहुत से फक्कड़ कवि मिलते हैं-कबीर के बाद पहली बार और अंतिम बार। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह द्विवेदी जी का स्वयं अपना युग है- वह युग जिसमें अपनी पीढ़ी के अन्य लेखकों के साथ उन्होंने साहित्य-सृजन आरंभ किया। क्या संयोग है कि अपने समकालीनों का परिचय प्रारंभ करते ही द्विवेदीजी की लेखनी से अदबदाकर प्राय: वही शब्द निकलने लगते हैं, जो कबीर के संदर्भ में प्रयुक्त हुए थे। उदाहरण के लिए '' छायावादी मूल भावधारा से पृथक् किंतु विश्वासों में संपूर्ण स्वच्छन्दतावादी फक्कड़ कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन की उद्दाम आवेगों वाली कविताएँ इसी काल में लिखी गई। ... सब कुछ छोड़कर आगे बढ़ जाने की घर फूँक मस्ती से इनकी रचनाएँ आकंठ भरी हुई हैं। '' नवीन के बाद भगवतीचरण वर्मा आते हैं जिनमें 'मस्ती' है, उल्लास है और अपने आपके प्रति दृढ़ विश्वास है। ... वे अनासक्त भोक्ता की भाषा में सुंदर और सौंदर्य की महिमा और अपनी मस्ती के गान गाते हैं। '' इसी क्रम में 'मस्ती और मौज के कवि बच्चन हैं'. .. जिनकी कविता में क्षणिक उल्लास की मस्ती का प्रचार देखकर ...शुरू-शुरू में 'हालाबाद' का नाम दे दिया गया था। '' अंत में ''श्मस्ती'' के कवि रामधारीसिंह दिनकर हैं। '' किंतु ''कल्पना की ऊँची उड़ान, विसदृश परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के कारण, दिनकर (अन्य) दो कवियों से एकदम भिन्न श्रेणी के कवि हैं। भगवतीचरण वर्मा और बच्चन में वैयक्तिक चेतना का प्राधान्य है (जबकि)दिनकर की उमंग और मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है। ''

स्वयं हजारीप्रसाद द्विवेदी, यद्यपि मस्ती के दौर वाले इन कवियों की सूची में अनुपस्थित हैं, फिर भी आज का इतिहासकार नि:संकोच वहाँ उनका नाम जोड़ सकता है। संयोग से उनकी उसी दौर की एक कविता भी सुलभ है जिसका पहला छंद उल्लेखनीय है-

रजनी दिन नित्य चला ही किया मैं अनन्त की गोद में खेला हुआ,
चिरकाल न वास कहीं भी किया किसी आँधी से नित्य धकेला हुआ,

न थका, न रुका, न झुका किसी फक्कड़ बाबा का चेला हुआ,
मद चूता रहा, तन मस्त बना, अलबला मैं ऐसा अकेला हुआ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कविता की सारी पदावली वही है, जो किसी-न-किसी रूप में नवीन, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन और दिनकर में मिलती है।

फक्कड़पन का यह नशा उन दिनों द्विवेदी जी पर इस हद तक चढ़ा था कि अप्रत्याशित रूप में प्रेमचंद में भी उन्हें अपना एक समानधर्मा दिखाई पड़ गया। प्रेमचंद की मृत्यु के तीन वर्ष बाद नवंबर 1939 की 'वीणा' में उन्होंने 'प्रेमचंद का महत्त्व' शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें बड़ी आत्मीयता के साथ वे 'गोदान' के एक 'मौजी' चरित्र मेहता का यह कथन उद्धृत करते हैं– '' मैं भूत की चिंता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवनी शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों तथा इतिहास के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं। उठने का नाम ही नहीं लेते। वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव धर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी, सहयोग में, भाईचारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है। ''

प्रेमचंद के संदर्भ में द्विवेदी जी के फक्कड़पन का वह क्रांतिकारी पहलू प्रकट होता है जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति कबीर की समीक्षा में होती है। प्रेमचंद का महत्त्व उनकी दृष्टि में क्या था, इसका पता उनकी इस घोषणा से चलता है कि '' वे अपने काल में समस्त उत्तरी भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार थे। '' निश्चय ही यह घोषणा करते समय गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर भी उनके सामने रहे होंगे, फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उस समय शायद ही किसी ने इतने अकुंठ भाव से प्रेमचंद के महत्त्व को पहचाना है। द्विवेदी जी ही पहले आदमी हैं जिन्होंने हिंदी जगत को यह बतलाया है कि ''वास्तव में तुलसीदास और भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद प्रेमचंद के समान सरल और जोरदार हिंदी किसी ने नहीं लिखी। ''

उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद के बारे में लिखते हुए द्विवेदी जी प्रायः उसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जो आगे चलकर कबीर के लिए काम आई, गोया

वे प्रेमंचद के रूप में आधुनिक कबीर की प्रतिमा गढ़ रहे हो। लिखते हैं– ''दुनिया की सारी जटिलताओं को समझ सकने के कारण ही वे निरीह थे, सरल थे। धार्मिक ढकोसलों को वे ढोंग समझते थे, पर मनुष्य को वे सबसे बड़ी वस्तु समझते थे। उन्होंने ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया फिर भी इस युग के साहित्यकारों में मानव की सद्वृत्तियों में जैसा अडिग विश्वास प्रेमचंद का था वैसा शायद ही किसी और का हो। असल में यह नास्तिकता भी उनके दृढ़ विश्वास का कवच थी। वे बुद्धिवादी थे और मनुष्य की आनंदिनी वृत्ति पर पूरा विश्वास करते थे। 'गोदान' नामक अपने अंतिम उपन्यास में अपने एक पात्र के मुँह से मानो वे अपनी बात कह रहे हैं : ''जो वह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हँसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किए डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही मोक्ष है और उपासना है। ज्ञानी कहता है, होंठों पर मुस्कुराहट न आए, आँखों में आँसू न आए। मैं कहता हूँ, गर तुम हँस नहीं सकते और रो नहीं सकते तो तुम मनुष्य नहीं पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं कोल्हू है। '' ऐसे थे प्रेमचंद – जिन्होंने ढोंग को कभी बर्दाश्त नहीं किया, जिन्होंने समाज को सुधारने की बड़ी-बड़ी बातें सुझाई ही नहीं, स्वयं उन्हें व्यवहार में लाए, जो मनसावाचा एक थे, जिनका विनय आत्माभिमान का, संकोच महत्त्व का, निर्धनता निर्भीकता का, एकांतप्रियता विश्वासानुभूति का और निरीह भाव कठोर कर्त्तव्य का कवच था, जो समाज की जटिलताओं की तह में जाकर उसकी टीम-टाम और भभ्भड़पन का पर्दाफाश करने में आनंद पाते थे और जो दरिद्र किसान के अंदर आत्मबल का उद्घाटन करने को अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य समझते थे, जिन्हें कठिनाइयों से जूझने में मजा आता था और जो तरस खाने वाले पर दया की मुस्कुराहट बिखेर देते थे, जो ढोंग करने वाले को कसके व्यंग्य बाण मारते थे और निष्कपट मनुष्यों के चेरे को जाया करते थे। '

यह है प्रेमचंद का क्रांतिकारी फक्कड़पन, जो उन्हें कबीर से जोड़ता है क्योंकि शायद कबीर से ही वह विरासत में मिला था, पर ध्यान देने की बात यह है कि इन दोनों को जोड़ने वाला कौन है? परंपरा के इस अंत:सूत्र को पहचानने वाला कौन है?

अब यदि द्विवेदी जी के ललित निबंधों और उपन्यासों पर दृष्टिगत करें तो फक्कड़पन तथा मस्ती के ढेरों प्रमाण मिलेंगे। ''अशोक है कि आज भी उसी

मौज है'', ''देवदारु के बार-बार कंपित होते रहने में एक प्रकार की मस्ती है, कुटज वैसे तो अदना-सा फूल है पर ऐसा मनस्वी और मस्त कि ''कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर और झंझा-तूफान को रगड़कर जीने का रस खींच लेता है'', कालिदास का दुलारा शिरीष तो ऐसा है कि ''जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी यह हजरत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं और मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। '' आकस्मिक नहीं कि शिरीष को देखकर द्विवेदी जी को कबीर याद आ जाते हैं और वे बोल उठते हैं : ''कबीर बहुत कुछ इसी शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवाह, पर सरस और मादक। '' और तो और अपने क्लासिकी संयम के लिए विख्यात कालिदास भी इस प्रसंग में याद आए बिना नहीं रहते और द्विवेदी जी को लगता है, ''कालिदास भी जरूर अनासक्त योगी रहे होंगे। '' शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और मेघदूत का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय से उमड़ सकता है। '' मेघदूत का उल्लेख यों ही नहीं आया है। आगे चलकर 'मेघदूत : एक पुरानी कहानी' के अंतर्गत 13वें छंद में 'जलद' शब्द आते ही द्विवेदी जी को 'फक्कड़पन' की व्याख्या के लिए जैसे अवकाश निकल आता है। लिखते हैं : ''मेघ यक्षों की उस जाति का नहीं है, जो केवल संचय करना जानते हैं, यह तो उन क्षण जन्मा मानवों की जाति का है, जो केवल लुटाना जानते हैं - दोनों हाथों से लुटाते हैं, लुटाते हैं, लुटाते हैं! ऐसे फक्कड़ों का क्या ठिकाना! अड़े तो अड़ गए, ढले तो ढल गए। मेघ भी उन्हीं मस्तमौला लोगों की टोली का जीव है। किधर चलने को हुए किधर निकल गए। दुखी कहाँ नहीं है, संतप्त किस दिशा में नहीं मिलते? जिसने दुखियों का दु:ख दूर करने का व्रत ले रखा हो, उसका कार्यक्रम क्या होगा! ना, मेघ महाशय को रास्ता अवश्य बता देना चाहिए। पता नहीं ये फक्कड़पन झूमते-झामते-लस्टम-पस्टम-जब तक अलका पहुँचेंगे तब तक यक्षप्रिया की क्या दुर्दशा हो जाए। '' कहाँ मेघ, कहाँ कालिदास और कहाँ कबीर! कबीर पर तो योग का प्रभाव था ही, कालिदास भी अनासक्त 'योगी' निकल आए।

जब कालिदास का यह हाल हुआ तो घुमक्कड़ बाणभट्ट में तो फक्कड़पन की पूरी गुंजाइश है। सबसे पहले बाण का नामकरण संस्कार। ''ऐसे ही कृति पिता का मैं पुत्र था - जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिरचित और घुमक्कड़। मैं घर से जब निकल भागा था, तो अपने साथ गाँव के अन्य छोकरों को भी फोड़ ले गया था। वे सब अंत तक मेरे साथ नहीं रहे, तो भी मैं गाँव

में बदनाम तो हो ही गया था। मगध की बोली में 'बंड' पूँछ-कटे बैल को कहते हैं। वहाँ यह कहावत मशहूर है कि 'बंड' आप आप गए, साथ में नौ हाथ का पगहा भी लेते गए। सो लोग मुझे 'बंड' कहने लगे। इसी को बाद में संस्कृत शब्द 'बाण' में जोड़ा। वैसे मेरा असली नाम दक्ष था। '' कहाँ भोजपुरी 'बंड' और कहा संस्कृत 'बाण'! लेकिन जब सर्जनात्मक कल्पना है, गल्प हाँकने का संकल्प तो ध्वनि विज्ञान क्या करेगा? बाण बंड हो गए। 'आत्मकथा' में बाण ने बड़ी व्यथा के साथ स्वीकार किया है कि ''इसी सहानुभूतिमय हृदय ने तो इसे आवारा बना दिया है। '' यह 'सहानुभूति हृदय' आवारापन की ही नहीं, फक्कड़पन की भी कुंजी है। बाणभट्ट में मस्ती की यदि कुछ कमी है तो उसकी पूर्ति कवि मित्र धावक (धोई) से हो जाती है, '' जिसकी दुनिया निर्लिप्त मस्ती की दुनिया है। जिस बात से अन्य कवि द्रवित हो जाते हैं उससे भी वह अपनी मस्ती का खाद्य निकाल लेता है'' और जिसका विश्वास है कि 'श्कवि बिंधता नहीं, बेधा करता है। अपांग बाण से नहीं, व्यंग्य बाण से। '' निर्दयता से पान खाए हुए और पुष्पों से सुसज्जित कविवर धावक प्रथम दर्शन में ही अपनी छवि से चौथे दशक के किसी लोकप्रिय गीतकार को मात देते नजर आते हैं।

'चारु चंद्रलेख' के सीदी मौला तो खैर तेरहवीं सदी के एक इतिहास-प्रसिद्ध विद्रोही फक्कड़ चरित्र ही हैं। किंतु 'पुनर्नवा' में दो-दो फक्कड़ प्रकट होते हैं। एक तो संस्कृत नाटकों के चिरपरिचित विदूषक माढ़व्य शर्मा हैं, जो अधिक जीवंत रूप पा सके हैं, दूसरे हैं अट्ट गँवार सुमेर काका जो द्विवेदी जी के अपने और असली फक्कड़ चरित्र हैं– किसानों के सहज ज्ञान से संपन्न, साहसी और हर समय मस्त! अंत में जैसे कि फक्कड़ को नायक बनाकर पूरा उपन्यास लिखने की आकांक्षा का ही फल है, 'अनामदास का पोथा।' उपन्यास के अंत में 'अनामदास की टिप्पणी' से पता चलता है कि ''छांदोग्य में एक से एक फक्कड़ विचारक मिलते हैं, जो रूढ़ियों के बिल्कुल कायल नहीं। '' गाड़ीवान रैन्क्व को संभवत: इसी विलक्षणता के कारण नायक के रूप में चुना गया है, जो जाने क्यों हर समय अपनी पीठ खुजलाया करता है। रैक्व के फक्कड़पन का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि पहली बार उसने राजा को उपदेश देना अस्वीकार कर दिया कि अन्न और सोना का उपहार भी लौटा दिया। लेकिन दूसरी बार जब राजा अपनी सुंदरी कन्या को साथ लेकर फिर गए तो ''फक्कड़ ऋषि प्रसन्न हुए और राजा की सुंदरी कन्या का मुख अपनी ओर उठाकर बोले

कि हे शूद्र, इस सुंदर मुख के कारण तुम मुझे बोलने को बाध्य कर रहे हो। ''

कहानी निश्चय ही दिलचस्प है, किंतु जैसा कि आलोचकों ने लक्षित किया है, उपन्यास में रैक्व का यह फक्कड़ चरित्र एकदम उभर नहीं सका है, एक प्रकार का बाल सुलभ भोलापन तो दिखता है, किंतु न वह फक्कड़पन है, न अक्खड़पन। यही नहीं बल्कि रैक्व के दीक्षागुरु औषस्ति भी छांदोग्य के अपने मूल चरित्र को खो बैठते हैं, जिसके लिए अंत में अनामदास को अपनी टिप्पणी में लिखना पड़ा कि ''औषस्तिपाद के प्रसंग में फक्कड़ और अक्खड़ उषस्ति की कोई भी चर्चा न होना कुछ समझ में न आने वाली बात है। '

फिर भी द्विवेदी जी ने 'अनामदास का पोथा' में इस अभाव की पूर्ति एक दूसरे चरित्र की अवतारणा से करने की कोशिश की है। उपन्यास समाप्त होते-होते सहसा एक जटिल मुनि प्रकट हो जाते हैं, जो वस्तुतः किसी उपनिषद्कालीन ऋषि या मुनि की अपेक्षा मध्ययुग के किसी शूद्रजातीय संत के प्रतिरूप प्रतीत होते हैं। रैक्व को बताया गया कि वे महात्मा सब तरह से विचित्र हैं। ब्राह्मण नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्म या वेद किसी के कायल नहीं है। ये अपने को अनेकांतवादी बताते हैं। कहते हैं, हर आदमी का सत्य अपना और निजी होता है। किसी के भी बताए मार्ग पर आँख मूँदकर नहीं चला जा सकता है। हर व्यक्ति का अपना सत्य है, उसी की खोज करनी चाहिए। वे अपने श्रम से उत्पन्न अन्न ही ग्रहण करते हैं, किसी का दिया कुछ नहीं लेते। रैक्व जब उनसे मिले तो वे घास छील रहे थे। सहायता की प्रार्थना की गई तो पास में पड़े पत्थर के क्षुरप्र (खुरपा) की ओर इशारा करके बोले कि बदले में मेरे लिए थोड़ी घास छील देनी होगी। तेज ऐसा कि रैक्व की ओर देखा तो लगा कि ''कोई भयंकर उल्का उनकी ओर बढ़ी चली आ रही है। '' लेकिन फिर ''ऐसा हँसे जैसे कोई आँधी सनसनाकर बढ़ती चली जा रही हो। '' फिर भी कुल मिलाकर जटिल वे बाहर से ही हैं, भीतर से एकदम सरल बच्चों जैसे।

इनसे पहले 'अनामदास का पोथा' में एक और साधु आते हैं, जिनसे जाबाला के गुरु आचार्य औदुंबरायण की भेंट होती है। वे भी यज्ञ के विरोधी हैं, ब्राह्मणों के विरोधी आचार्य ने जब उन्हें देखा तो महात्मा प्रायः निर्वस्त्र थे। उनमें एक विचित्र प्रकार का तेज था। ऐसा लगता था कि किसी बिल के द्वार पर मणिधर सर्प ने अपनी मणि उतारकर रख दी है। शरीर उनका काला था, नाक चिपटी, कान बड़े-बड़े चौड़े और ललाट सपाट। उनके निकट जो स्त्री - पुरुष बैठे थे वे प्रायः छोटी जाति के लोग थे। सामने आग की धूनी जलाए बैठे थे,

उनका सारा शरीर इस धूनी की भस्म से पूता हुआ था। पास में एक ताँबे का चिमटा था और एक मिट्टी का टोंटीदार पात्र भी। आचार्य के साथ जिस अक्खड़पन से पेश आए, वह भगा देने के लिए काफी था। अंततः पसीजे। लगा, भीतर काफी करुणा और कोमलता है। फिर भी जटिलमुनि का-सा फक्कड़पन यहाँ नहीं है।

क्या यह आकस्मिक है कि 'अनामदास का पोथा' के ये दोनों फक्कड़ और अक्खड़ साधु छोटी जातियों से सबंद्ध हैं और धर्म-कर्म में ब्राह्मण विरोधी हैं?

'मेरी जन्मभूमि' शीर्षक लेख में द्विवेदी जी ने अपने इलाके के निवासियों के फक्कड़ स्वभाव की चर्चा की है। द्वाबा का यह वह मध्यवर्ती भू-भाग है जिसे गंगा और सरयू जैसी दो महानदियों का कोप बराबर सहते रहना पड़ा है। ''इस भू-भाग का इतिहास ही निरंतर बनते और मिटते रहने का है। एक अजीब प्रकार की मस्ती और निर्भयता इन लोगों के चेहरों पर दीखती है। '' क्या इस मस्ती और निर्भीकता का स्रोत विपत्ति के इन थपेड़ों में तो नहीं?

बहरहाल अब यदि अशोक, शिरीष, देवदारु, कुटज आदि मस्ती में झूमते फूलों और बाणभट्ट, धावक, सीदी मौला, माढव्य, सुमेर काका, रैक्व, जटिलमुनि आदि फक्कड़ चरित्रों के आलोक में कबीर को देखें तो संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि 'कबीर' भी द्विवेदी जी की अन्य कल्प-सृष्टियों की ही शृंखला में एक कड़ी हैं-निश्चय ही आलोचना क्षेत्र की एक विशिष्ट कल्प-सृष्टि! इस आलोचनात्मक कल्प-सृष्टि का मूल्य उसकी 'प्रामाणिकता' से अधिक अपने रचनाकाल की तात्कालिक प्रासंगिकता में है।

वस्तुतः बीसवीं सदी के चौथे दशक में विद्रोही फक्कड़पन के ही किसी-न-किसी रूप को लेकर साहित्य में प्रकट हुआ था। इसका एक रूप निराला के 'कुकरमुत्ता' (1940) के बड़बोलेपन में है तो दूसरा रूप सांकृत्यायन की 'वोल्गा से गंगा' (1942) नामक कथाकृति में है, जो भारतीय इतिहास की धमाकेदार क्रांतिकारी व्याख्या प्रस्तुत करती है। इसके साथ ही राहुल जी के घुमक्कड़पन की कहानियों का भी इससे कुछ नाता-रिश्ता है। आकस्मिक नहीं है कि इस काल के अनेक उपन्यासों के नायक घर-परिवार से मुक्त क्रांतिकारी थे। नवीन ने जब यह गाया था कि 'ठाठ फकीराना है अपना, बाघंबर सोहे अपने तम/हम अनिकेतन, हम अनिकेतन' तो वे उस दौर के मिजाज को ही व्यक्त कर रहे थे। इतिहासकारों के अनुसार यह काल घोर उथल-पुथल और मंथन का काल

था। गांधी-युग के आदर्शवाद का ढाँचा जीवन के हर क्षेत्र में चरमरा उठा था। अनेक राजनीतिक और नैतिक आदर्श संदिग्ध हो उठे थे। यह वही काल है जब मार्क्स और फ्रायड दोनों एक विचार के साथ भारत के शिक्षित मध्यवर्ग को प्रभावित और आंदोलित कर रहे थे। दूसरे महायुद्ध के कारण सामान्य जीवन के आर्थिक पक्ष पर जो प्रभाव पड़ा था उससे असुरक्षा की भावना और ज्यादा बढ़ी थी। हिंदू-मुस्लिम एकता की समस्या भी स्वाधीनता - संग्राम के संदर्भ में अत्यंत उग्र हो उठी थी। बच्चन की 'मधुशाला' का यह समाधान उस दौर के फक्कड़पन की ही उपज था : ''बैर बढ़ाते मंदिर मस्जिद मेल कराती मधुशाला। '' और ''सौ सुधारकों का करती है काम अकेली मधुशाला।''

इस दौर के विद्रोह को यदि अपने अतीत से कोई नैतिक समर्थन मिल सकता था तो केवल कबीर से। जिस तरह व्यक्तिगत और सामाजिक पाखंड के प्रत्येक रूप के विरुद्ध आक्रोश इस दौर में था उसकी प्रतिध्वनि कबीर में ही सुनी जा सकती थी। किंतु कुल मिलाकर यह विद्रोह भावात्मक और साहित्यिक ही था। विद्रोही कवि और लेखक इस मामले में पूरी तरह सतर्क थे कि उन्हें समाज-सुधारक समझने का भ्रम न हो। उन्नीसवीं सदी के समाज-सुधारकों की उपदेशात्मक भंगिमा और भाषा से इस दौर के साहित्य का तेवर साफ अलगाया जा सकता है। अलगाव के लिए उपदेश की शुष्कता से बचना आवश्यक था। फक्कड़पन का बाना शायद इसी आवश्यकता की उपज था।

आकस्मिक नहीं है कि द्विवेदी जी ने कबीर के समाज-सुधारक रूप का खंडन बड़ी दृढ़ता से किया। शुक्ल जी ने अपने 'इतिहास' में एक तरह से इस बात का समर्थन किया था कि ''पाश्चात्यों ने इन्हें (कबीर आदि निर्गुणिया संतों को) जो 'धर्म सुधारक' की उपाधि दी है'' वह उचित ही है। द्विवेदी जी ने संभवत: इसी बात को ध्यान में रखते हुए लिखा कि ''जो लोग कबीरदास को हिंदू-मुस्लिम धर्मों का सर्व-धर्म समन्वयकारी सुधारक मानते हैं वे क्या कहते हैं, ठीक समझ में नहीं आता। कबीर का रास्ता बहुत साफ था। वे दोनों को शिरसा स्वीकार कर समन्वय करने वाले नहीं थे। समस्त बाह्याचारों के जंजालों और संस्कारों को विध्वंस करने वाले क्रांतिकारी थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था। इतने बड़े जंजाल को नाहीं कर सकने की क्षमता मामूली आदमी में नहीं हो सकती।

सारांश यह कि द्विवेदीजी की दृष्टि में कबीर 'सुधारक' नहीं, बल्कि एक 'क्रांतिकारी' थे। अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए वे एक सिद्धांत के रूप

में आगे यह जोड़ते हैं कि ''सबकी विशेषताओं को रखकर मानव-मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती। जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, संप्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हैसियत से ही मिलें। ''

स्पष्टत: यह क्रांतिकारी दृष्टिकोण है, जिसमें गांधीवादी 'सार-संग्रह' और 'समन्वय' के सुधारवादी कार्यक्रम का विरोध निहित है। भारतीय साहित्य की यह दूसरी परंपरा है, जो काल प्रवाह में भले ही गौण हो गई हो किंतु क्रांतिकारी परंपरा यही है, और द्विवेदी जी ने 'कबीर' के माध्यम से उस क्रांतिकारी परंपरा को पुन: उद्‌भासित करके ऐतिहासिक कार्य किया है।

नि:संदेह कबीर के क्रांतिकारी रूप को पहचानने में उनके समकालीनों से भी कोई भूल नहीं हुई थी, जिसका प्रमाण है नाभादास के 'भक्तमाल' का वह प्रसिद्ध छप्पय: 'कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी। ' इत्यादि। महिमा तो नाभादास ने सभी संतों की बखानी, किंतु 'मुख देखी नाहिन भनी' कबीर के सिवा किसी और के लिए नहीं कहा। नाभादास के बाद कबीर के उस क्रांतिकारी रूप को बीसवीं सदी में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ही पहली बार पहचाना। जरूरी नहीं कि 'फक्कड़पन' की क्रांति की पहचान हो, किंतु इसके साथ यह भी तय है कि चिलम न पाकर आक्रोश व्यक्त करने वालों का 'अक्खड़पन' क्रांति नहीं है। आज का युग अपने कबीर की प्रतिमा स्वयं गढ़ेगा, लेकिन उससे द्विवेदी जी के कबीर की प्रतिमा धूमिल न होगी क्योंकि उसमें एक क्रांतिकारी परंपरा की पहचान से उत्पन्न कालजयी कांति है।

आज के राजनीति-प्रधान युग में यदि द्विवेदी जी के कबीर की क्रांतिकारिता में शंका होगी तो इस कारण कि उन्होंने अपने जमाने की राजसत्ता को कोई चुनौती नहीं दी। यह सही है कि द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक में उस किंवदंती का जिक्र नहीं किया है जिसके अनुसार कबीर को सिकंदर लोदी के कोप के कारण काशी छोड़ना पड़ा था। किंतु उस किंवदंती की प्रामाणिकता पर प्राय: अधिकांश विद्वानों ने संदेह प्रकट किया है। वैसे, यह विचारणीय है कि प्राय: सभी प्रमुख भक्तों के बारे में इस प्रकार की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए तुलसीदास के विषय में यह किंवदंती है कि अकबर ने मिलने के लिए बुलाया, पर बाबा नहीं गए। नाराज होकर बादशाह ने उन्हें कैद करवा दिया। इस पर हनुमान जी की बंदर सेना ने इतना उपद्रव किया कि तुलसीदास

को रिहा करने का हुक्म देना पड़ा। संतों के बारे में ये किंवदंतियाँ कब बनीं और इनके पीछे कौन-सी मनोवृत्ति थी, इस पर शोध की आवश्यकता है।

इधर कुछ उत्साह परायण पंडित तुलसीदास - जैसे भक्तों की रचनाओं से दो-चार पंक्तियाँ निकालकर यह साबित करने की कोशिश करते पाए जाते हैं कि तुलसीदास अपने जमाने की राजसत्ता के विरोधी थे। ये प्रयास वस्तुतः उन किंवदंतियों की ही परंपरा में आते हैं। ये प्रयास मध्ययुगीन संतों और भक्तों के मुख्य कथ्य के प्रति अपनी अवज्ञा सूचित करने के साथ ही मध्ययुगीन भारतीय समाज के मुख्य अंतर्विरोध के प्रति भी घोर अज्ञान की सूचना देते हैं। राजसत्ता भक्तों के लिए सर्वथा उपेक्षा की वस्तु थी - उसके प्रति भक्तों के मन में न किसी प्रकार की भक्ति का भाव था, न विरोध का। यह आवश्यक भी न था। क्योंकि साधारण जनता के जिन दुखों से भक्त कवि दुखी थे उनका सीधा संबंध आगरा या दिल्ली के तख्त पर बैठे बादशाह से उतना न था, जितना अपने गाँव के उस समाज से जिसका नियमन जातिधर्म के परंपरागत नियमों से होता था जिसमें राजसत्ता के स्थानीय प्रतिनिधि गाँव के मालिकों के सहयोग से दमनकारी भूमिका निभाते थे। इस ग्रामीण व्यवस्था में, जहाँ परंपरागत जातिधर्म जीवन के समस्त क्रिया-कलापों का नियामक था, सरकार की हैसियत एक बाहरी लुटेरे से अधिक न थी, जिसे बहुत कुछ अनावश्यक या फालतू मानकर भी काम चलाया जा सकता था। ऐसी स्थिति में सरकार का विरोध विशेष अर्थ नहीं रखता। मुख्य शत्रु जबकि अपने अंदर ही हो तो विरोध का लक्ष्य स्वभावतः वहीं होगा और चूँकि यह जाति व्यवस्था धार्मिक विधि-विधानों के रूप में ही समाज का नियमन करती रही है, इसलिए दलित जातियों का असंतोष और आक्रोश भी प्रायः धर्म के ही रूप में प्रकट होता रहा है। इतने असंतोष और आक्रोश के बाद भी यह जाति-व्यवस्था इतने दीर्घकाल तक बनी रही तो इसका कारण यह है कि इसके अंदर हर विद्रोह को अंतर्मुक्त करने की क्षमता रही है, एक साथ ही यह इतनी कठोर और इतनी लचीली रही है कि इसे चुनौती देने वाले धार्मिक आंदोलनों के अनुयायी भी अंततः एक जाति बनाकर इसकी एक इकाई के रूप में अंतर्भुक्त हो गए।

इस जाति-व्यवस्था के शिकार व्यक्ति जिस प्रकार अपनी अधोगति को स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं और जिसमें न तो क्रोध का कोई निश्चित लक्ष्य दृष्टिगत होता है, न दुर्गति के लिए उत्तरदायी किसी निश्चित बिंदु का पता चलता है, उसे देखकर यदि बैरिंगटन ने 155 जैसा समाजशास्त्री यह कहे कि किसी

पाश्चात्य व्यक्ति को वह काफ्का के संसार का प्रचंड व्यंग्य चित्र प्रतीत होता है, तो कोई आश्चर्य नहीं।

कबीर जैसे संत का विरोध संभवत: इसी सामंती-पुरोहिती के दमन के चक्र से था, जिसमें जनसाधारण हिंदू-मुसलमान दोनों ही पिस रहे थे। यह दमन चक्र किसी राजनीतिक अत्याचार से कितना अधिक और अमानुषिक है, इसे आज स्वाधीन भारत के किसी क्रांतिकारी को बतलाने की जरूरत नहीं है। इसलिए यदि कबीर ने अपने जमाने के किसी सुल्तान को छोड़कर सामंती-पुरोहिती शक्तियों के खिलाफ आवाज उठाई तो सिर्फ इसी कारण उनकी क्रांतिकारिता कम नहीं हो जाती। इसलिए द्विवेदी जी के कबीर पर उँगली उठाने से पहले आज के क्रांतिकारियों को अपने गरेबाँ में हाथ डालकर देखना चाहिए।

❐❐❐